RP-12

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 1 अंक 4
अप्रैल 1999 • दो रुपये • आठ पृष्ठ

भाजपा सरकार का नया कुचक्र : नई आर्थिक नीतियों का नया कहर

मजदूरों के बचे-खुचे अधिकारों पर कुल्हाड़ा गिराने की तैयारी
अब नये श्रम-कानूनों की बारी

निजीकरण-उदारीकरण कुचक्र के बीते आठ वर्षों के दौरान मजदूरों के खिलाफ जितनी साजिशाना कार्रवाइयां हुई हैं, उनमें जन्दी ही एक और कड़ी जुड़ने वाली है। भाजपा सरकार पेटेण्ट कानूनों में बदलाव और बीमा क्षेत्र में विदेशी कम्पनियों को प्रवेश देने सम्बन्ध‍ी अध्यादेश के बाद अब श्रम कानूनों के मौजूदा ढांचे और स्वरूप में बदलाव लाने के लिए कमर कस चुकी है। मज़दूरों के रहे-सहे जनवादी अधिकारों पर फण्ड-बैंक-डब्ल्यू. टी. ओ. की तिकड़ी के नुस्खा-निर्देशित नीतियों का हत्यारा कुल्हाड़ा गिरने ही वाला है।

ज्ञातव्य है कि श्रम कानूनों में बदलाव लाना भी उस ढांचागत समायोजन का एक बुनियादी नुक्ता था, जिसके लिए विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष जैसी साम्राज्यवादियों की चाकर अन्तरराष्ट्रीय एजेंसियां विगत आठ वर्षों से लगातार दबाव बनाये हुए हैं। जिस बदनाम गैट-समझौते पर हस्ताक्षर करके भारत विश्व व्यापार संगठन में शामिल हुआ है, उसमें पेटेण्ट कानूनों में बदलाव और बैंक तथा बीमा सेक्टर के निजीकरण के साथ ही श्रम कानूनों में बदलाव लाना भी एक बुनियादी शर्त है ताकि विदेशी कम्पनियां और देशी पूंजीपति श्रमिकों को मनमाने ढंग से निचोड़कर अपनी तिजोरी भर सकें।

अभी पिछले दिनों भारतीय पूंजीपतियों की संस्था 'कंफेडरेशन ऑफ इण्डियन इण्डिस्ट्रीज' (सी. आई. आई.) द्वारा श्रम कानूनों पर आयोजित एक सेमिनार में भारत सरकार के श्रम सचिव ने साफ-साफ कहा कि "सरकार श्रम कानूनों में संशोधन की तैयारी कर रही है ताकि इन्हें उद्योगों के पक्ष में किया जा सके।" श्रम सचिव महोदय ने पूंजीपतियों का दिल बाग-बाग करते हुए यहां तक कह डाला कि भूमण्डलीकरण के दौर में दुनिया भर में मजदूरों से मुख्यत: ठेके पर ही काम कराया जाता है और भारतीय श्रम संगठनों को यह बात समझनी चाहिए कि ठेका प्रथा से मजदूरों का शोषण नहीं होता, बल्कि यह उनके कल्याण के लिए है। श्रम सचिव ने स्पष्ट किया कि मजदूरों की समस्याओं का निपटारा अब कारखाना स्तर पर ही होगा और इसमें सरकारी हस्तक्षेप कम से कम होगा। यानी मजदूरों की सेवा-शर्तों के बाबत, उन्हें निकालने या छंटनी करने आदि के बारे में सरकार अब देशी-विदेशी पूंजीपतियों को एकदम "खुला खेल फर्रुखाबादी" खेलने की इजाजत देने के लिए तैयार है। श्रम कानूनों और न्यायालयों की रही-सही भूमिका भी अब समाप्त कर दी जायेगी।

श्रम कानूनों में प्रस्तावित इन बदलावों ने पूंजीवादी जनवाद के झीने से परदे को भी उतार डाला है और "कल्याणकारी" सरकार के नकाबों को नोचकर इस सच्चाई को एकदम उजागर कर दिया है कि पूंजीवादी व्यवस्था में सरकार सिर्फ पूंजीपतियों की 'मैनेजिंग कमेटी' होती है।

अभी इसी माह 35 वें राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का उद्घाटन करते समय योजना आयोग के उपाध्यक्ष के. सी. पंत ने भी सरकार की नीयत का खुलासा करते हुए बताया कि नवीं योजना के अतंर्गत श्रम कानूनों की संख्या काफी कम कर दी जायेगी और उन्हें सरल बनाया जायेगा। लेकिन सच यह है कि कानूनों को सरल बनाने के नाम पर श्रमिकों के रोजगार की रही-सही सुरक्षा भी समाप्त कर दी जायेगी और कारखाना मालिकों को मनमाने अधिकार दे दिये जायेंगे। श्री पंत ने यह भी कहा कि सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण की प्रक्रिया तेज की जायेगी और "बीमार" उद्योगों की सब्सिडी देने के बजाय बंद कर दिया जायेगा। श्री पंत ने इसकी कोई चर्चा नहीं की कि इन उद्योगों के श्रमिकों का क्या होगा। इसी सिलसिले में उन्होंने कुछ राज्यों द्वारा शुरू की गई स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति की योजनाओं की भी खूब प्रशंसा की।

कलम की वेश्यावृत्ति करने वाले एक दूसरे भाड़े के टट्टू पत्रकार ने एक अंग्रेजी अखबार में यह लिखकर सरकार की मंशा और अधिक जाहिर कर दी है कि "नियोक्ताओं को मजदूरों को रखने और निकालने का पूरा अधिकार दिये बिना आर्थिक सुधारों की गति तेज नहीं होगी।" यही नहीं, उसके साफ लिखा है कि "सबको रोजगार की जगह सिर्फ उत्पादक रोजगार दिया जाना चाहिए।" यानी मजदूरों की मनमानी संख्या को फाजिल बताकर छंटनी कर देने और उन्नत तकनोलाजी के जरिए मजदूरों की कम से कम संख्या से ज्यादा से ज्यादा अतिरिक्त मूल्य निचोड़ने की पूंजीपतियों को पूरी छूट दे दी जानी चाहिए।

उल्लेखनीय है कि वर्तमान भाजपा सरकार से पहले कांग्रेस और संयुक्त मोर्चे की सरकारें भी श्रमिकों के बचे-खुचे अधिकारों को भी हड़प लेने के लिए इस बात की रट लगाती रहीं थीं कि "पुराने" पड़ चुके श्रम कानूनों को उदारीकरण की प्रक्रिया के मुताबिक ढालना जरूरी है। जाहिर है कि अब भाजपा सरकार ने जब बदलाव की इस प्रक्रिया में हाथ लगा दियां है तो संसद में कुछ रस्मी विरोध करते हुए कांग्रेस, जनता दल, समाजवादी पार्टी, रा. ज. द. और संसदीय वामपंथी भी इस प्रक्रिया में भीतर-भीतर सरकार का साथ ही देंगे और इनके पुछल्ले गद्दार ट्रेड-यूनियन नेता भी ऐसा ही करेंगे।

श्रम कानूनों में बदलाव लाने के लिए सरकार एक श्रम आयोग का गठन कर चुकी है। इसके लिए तमाम मंत्रालयों से जो सुझाव मिले हैं, उनपर निगाह डालने से सरकार की बदमाशी एकदम साफ हो जाती है: एक प्रस्ताव यह आया है कि छंटनी को आसान बनाने के लिए तीन महीने की नोटिस-अवधि, सरकार

(पेज 8 पर जारी)

'बिगुल' के लक्ष्य और स्वरूप पर एक बहस और हमारे विचार

सम्पादकीय

'बिगुल' का पाठक कौन है? मजदूरों के किस हिस्से तक पहुंचना इसका मकसद है?-इन सवालों पर अखबार से जुड़े संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं-हमदर्दों के बीच लगातार बहस-बातचीत होती रहती है। कुछ हलकों से, और विशेष तौर पर बुद्धिजीवी साथियों की ओर से यह शिकायत भी आती है कि आम मजदूर या औसत मजदूरों की व्यापक आबादी को बिगुल की भाषा या लेख समझ में नहीं आते।

यह बहस महज एक तकनीकी-व्यावहारिक प्रश्न पर केन्द्रित नहीं है। यह मजदूरों के बीच प्रचार और संगठन की कार्रवाई तथा मजदूर वर्ग के राजनीतिक अखबार के प्रति दो पहुंचों या नजरियों का टकराव है। यह मजदूर वर्ग की चेतना के क्रान्तिकारीकरण के प्रति दो तरह की सोचों या बोधों के बीच की बहस है।

'बिगुल' के प्रवेशांक से लेकर अबतक, कई बार इसके स्वरूप के बारे में यह साफ किया जा चुका है कि बिगुल किसी ट्रेड यूनियन का मुखपत्र कदापि नहीं है। इसका दायरा अलग है। 'बिगुल' का उद्देश्य है – **मजदूर वर्ग के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई चलाना, मजदूर वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन की याद दिलाना, मजदूर क्रान्ति की विचारधारा एवं उसके रास्ते से उसे परिचित कराना तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी राजनीतिक संगठन के निर्माण व गठन की दिशा में उसे प्रेरित और उन्मुख करना।**

कुछ राजनीतिक कार्यकर्ताओं की यह राय है कि मजदूर वर्ग के बीच सीधे-सीधे विचारधारात्मक-राजनीतिक प्रचार से अखबार को बचना चाहिए और आर्थिक संघर्षों के मुद्दों एवं कार्रवाइयों तथा आम जनवादी अधिकार के सवालों के इर्दगिर्द लेख-टिप्पणियां-रपटें आदि छापकर आम मजदूरों की चेतना के स्तर को ऊंचा उठाना चाहिए। ऐसे लोगों का मानना है कि इसी प्रक्रिया में आम मजदूरों में से कुछ वर्ग-सचेत मजदूर और उनमें से कुछ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट तैयार होंगे। **यह अर्थवाद और सामाजिक जनवाद की एक नई मेंशेविक प्रवृत्ति है,** यह एक तरह की अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी प्रवृत्ति है जो मजदूर वर्ग की पार्टी की अपरिहार्यता के बजाय यूनियन के संघर्षों को ही मुक्ति का मार्ग मानती है या महज आर्थिक लड़ाइयां लड़ना व यूनियनें खड़ी करना सर्वोपरि "क्रान्तिकारी काम" मानती है और सोचती है कि इसी के जरिए मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के गठन और निर्माण का काम भी पूरा हो जाएगा। चुनावी वामपंथी तो ऐसा सोचते ही थे, क्रान्तिकारी शिविर में भी कुछ हिस्से मजदूर वर्ग के बीच इसीतरह से काम करने के बारे में सोच रहे हैं और अर्थवाद के समान्तर जुझारू अर्थवाद और ट्रेड यूनियन के सामने जुझारू ट्रेड यूनियनवाद का मॉडल खड़ा करने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे लोगों को इस विषय पर लेनिन की शिक्षाओं के ककहरे से परिचित होने की जरूरत है।

हमारी यह स्पष्ट सोच है कि अखबार के जरिए

(पेज 6 पर जारी)

प्रदूषण के बहाने १४६ नये उद्योगों को बन्द करने की साजिश

दिल्ली (बिगुल प्रतिनिधि)। दिल्ली सरकार ने प्रदूषण फैलाने वाली 146 नये औद्योगिक इकाइयों का पता लगा लिया है और जल्द ही इनके बन्दी का आदेश जारी करके इसमें कार्यरत हजारों मजदूरों के भविष्य को अन्धकारमय बना दिया जाएगा।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में उदारीकरण-निजीकरण की जो बयार बह रही है उसमें छंटनी-तालाबन्दी की प्रक्रिया काफी तेज हो चुकी है। और इस प्रक्रिया में न्यायापालिका ने भी अपनी पक्षधरता स्पष्ट कर दी है। इससे पूर्व सर्वोच्च न्यायानय के ही आदेश से दिल्ली की 1328 औद्योगिक इकाइयों को बन्द करके लाखों मजदूरों को सड़कों पर ढकेला जा चुका है। उत्तर प्रदेश में भी गंगा प्रदूषण के बहाने न्यायालय के ही आदेश से ढेरों उद्योगों में ताले लगाए जा चुके हैं।

दिल्ली के पर्यावरण मंत्री अशोक कुमार वालिया

(पेज 7 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

आखिर यह कब तक होगा?

'बिगुल' के माध्यम से देश के हालात और वर्तमान सामाजिक स्थितियों की सटीक जानकारी मिलती है। जिस प्रकार आज मजदूर विरोधी नीतियां लागू हो रही हैं और देशी-विदेशी लुटेरों ने जो चौतरफा हमला बोला है उसके घातक परिणाम रोज ब रोज देखने-सुनने को मिलता है।

एक के बाद एक कारखानों की बन्दी और छंटनी ने भारी पैमाने पर लोगों को सड़कों पर ढकेला ही है, अब तो भाजपा शासन में सड़कों के किनारे छोटे-मोटे कारोबार करने और फुटपाथ पर कुछ बेचकर जीवन यापन करने तक पर पाबन्दी लगा दी गयी है। नए को कौन कहे, बीसो साल से जो लोग ठेला-खोमचा-गुमटी लगा कर कुछ गुजर बसर कर ले रहे थे, उन्हें नगर पालिका और पुलिस प्रशासन के दम पर उजाड़ दिया जा रहा है, उनके सामानों को नष्ट कर दिया जा रहा है और उल्टे उनसे पेनाल्टी भी वसूली जा रही है - उन्हें जेलों तक में डाला जा रहा है। सुनने में आया है कि अब फेरी वालों से भी टैक्स वसूला जाएगा। इसका प्रतिरोध करने पर पुलिस की लाठियां और गोलियां बरसने के लिए तैयार रहती हैं। लेकिन, आखिर यह कब तक होगा?

जो सरकार जनता को रोजगार भी नहीं दे सकती उसे भला अपना रोजगार करने से रोकने का क्या हक है? यह 'सुन्दरीकरण' आखिर किस कीमत पर और किसके लिए?

कैसी विडम्बना है कि एक तरफ तो लोगों को पीने के लिए पानी तक ठीक से मुहैय्या नहीं हो पा रहा है वहीं दूसरी तरफ चौराहों-पार्कों में फौव्वारे छूटते हैं। गांव में खेती के लिए बिजली की समुचित व्यवस्था नहीं है लेकिन शहरों-महानगरों की सड़कों-चौराहों पर रौशनी की ऐसी व्यवस्था कि रात भी दिन नजर आए! साफ नजर आ रहा है कि यह सब कुछ किसके लिए है! अमीरजादो की धमाचौकड़ी के लिए तो भारी अपव्यय हो रहा है लेकिन भारी मेहनतकश आबादी से जीने के साजो सामान तक छीने जा रहे हैं।

इस संकटपुर्ण स्थिति में चीजों के बारे में आज न केवल सोचना जरूरी है, बल्कि इसे बदलने के लिए भी कमर कसना जरूरी है। इस रूप में 'बिगुल' के दिशा-निर्देश में निश्चित रूप से परिवर्तन की नई दिशा फूट रही है।

-राजेश कुमार
पनकी, कानपुर

धोखेबाजों-मुनाफाखोरों को धता बताना होगा!

'मक्कार मुनीम की लफ्फाजी और मेहनतकश जनता की तबाही बर्बादी' यही तो है हमारे नए बजट की सच्चाई। पूरे बजट में "स्वदेशी" ठेकेदारों द्वारा उद्योगपतियों पर मंदी की मार का काफी रोना रोया गया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लूटने के रास्ते खोलने पर खूब मशक्कत की गयी, लेकिन आम गरीब जनता पर इसके पड़ने वाले प्रभावों को बड़े ही सफाई से गोल कर दिया गया। कीमतों में भारी वृद्धि से आम जनता का जीना दूभर होता जा रहा है, इसपर इन "राष्ट्र भक्तों" को अब घड़ियाली आंसू भी बहाने की जरूरत नहीं रह गयी है।

इस बार खूब अच्छी पैदावार हुई है। तो सरकार की चिन्ता इस बात में है कि कीमतों को कैसे न्यूनतम स्तर से नीचे न जाने दिया जाए, ताकि मुनाफाखोरों के मुनाफे में कमी न आए। किसानों को तो अति उत्पादन का हौव्वा खड़ा करके इतनी कम कीमत दी जा रही है कि उनके बीज-खाद का भी पैसा बमुश्किल निकले, जबकि जमाखोरों को भविष्य में ज्यादा मुनाफा हो इसकी समुचित व्यवस्था हो रही है।

इस मक्करी को समझना होगा और इसका समुचित उत्तर देने के लिए तैयार रहना होगा ताकि इन धोखेबाजों और मुनाफाखोरों की हिमायती सरकारों को धता बताया जा सके।

-जुबेर आलम
सेक्टर-14, नोयडा
(गौतमबुद्ध नगर)

शहीदे आजम भगतसिंह शहादत दिवस का संकल्प

सारी सत्ता मेहनतकशों को

मर्यादपुर, मऊ। शहीदे आजम भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर **देहाती मजदूर किसान यूनियन, नौजवान भारत सभा** और **नारी सभा** की स्थानीय इकाई ने 21 मार्च से 28 मार्च तक एक साझा जन-जागृति अभियान चलाकर क्षेत्र के गरीब मेहनतकशों के बीच भगतसिंह के सपनों की याद दिलायी और उसे पूरा करने के लिए संघर्ष का संकल्प दुहराया।

अभियान की शुरुआत साइकिल जुलूस से हुई। जुलूस में शामिल कार्यकर्ताओं ने मर्यादपुर के निकटवर्ती बाजारों-गांवों में छोटी-छोटी नुक्कड़ सभाओं और पर्चा-विवरण के जरिये भगतसिंह के विचारों का प्रचार किया। कार्यकर्ता साइकिलों पर नारे लिखी तख्तियां भी लगाये हुए थे, जिनपर '**खत्म करो पूंजी का राज, लड़ो बनाओ लोक स्वराज**', '**भगतसिंह का सपना आज भी अधूरा, मेहनतकश और नौजवान उसे करेंगे पूरा**', '**सारी सत्ता मेहनतकशों को**', '**जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**' आदि नारे लिखे हुए थे।

तीनों संगठनों के कार्यकर्ताओं की टोलियों ने सप्ताह भर लगभग तीन दर्जन गांवों में घनीभूत जनसम्पर्क एवं प्रचार अभियान चलाया। अभियान के समापन पर 28 मार्च को मर्यादपुर बाजार में एक आम सभा और सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

सभा में संगठनकर्ता **अरविन्द सिंह** ने उपस्थित मजदूरों-किसानों-नौजवानों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भगतसिंह श्रमिक क्रान्ति के जरिये एक समतामूलक समाज बनाने के लिए सत्ता की बागडोर मेहनतकशों के हाथों में सौंपने का सपना देख रहे थे। इस अधूरे सपने को पूरा करने के लिए उन्होंने गांव के गरीबों को अपनी एकजुटता मजबूत बनाने का आह्वान किया।

'**दायित्वबोध**' के प्रधान सम्पादक **विश्वनाथ मिश्र** ने आज के साम्राज्यवादी शोषण और लूट के नये-नये हथकण्डों के बारे में विस्तार से चर्चा करते हुए कहा कि देश की पूंजीवादी सत्ता आज साम्राज्यवाद से गठजोड़ कायम कर चुकी है। उन्होंने कहा कि पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्ति ही भगतसिंह के सपनों को पूरा कर सकती है।

नारी सभा की गोरखपुर इकाई की **मीनाक्षी** ने कहा कि बाजार और मुनाफे की व्यवस्था द्वारा मेहनतकश औरतों की आर्थिक लूट के साथ-साथ उनके आत्मसम्मान और स्वाभिमान को भी रोज-रोज कुचल रही है। नारी सभा की स्थानीय इकाई की ओर से राजुली देवी, समीक्षा और निर्मला ने मेहनतकश औरतों का आह्वान किया कि वे आपस के छोटे-मोटे झगड़ों से बाहर आकर अपनी फौलादी एकजुटता कायम करें।

देहाती मजदूर किसान यूनियन के स्थानीय संयोजक **डॉ. दूधनाथ** ने आह्वान किया कि देशी-विदेशी पूंजी की लूट के शिकंजे से मेहनतकश अवाम को आजाद करने के लिए आज क्रान्तिकारी लोकस्वराज्य का परचम उठाना पड़ेगा जिसका अर्थ है सारी सत्ता मेहनतकशों को। यूनियन के कार्यकर्ता **इन्द्रदेव** ने आम मेहनतकश जनता का, पूंजीपतियों की दलाल चुनावी पार्टियों और स्थानीय दलाल तत्वों की फूटपरस्ती की साजिशों में न फंसने का आह्वान किया। **नौजवान भारत सभा** के **यशवन्त मल्ल** ने नौजवानों से मृगमरीचिका में भटकने के बजाये भगतसिंह के रास्ते पर चलने और नया समाज बनाने के लिए कुर्बानियों के रास्ते पर चलने का आह्वान किया।

आम सभा के दौरान तीनों संगठनों की संयुक्त सांस्कृतिक टोली ने लोकगीतों के माध्यम से नये इंकलाब के लिए उठ खड़े होने का आह्वान किया।

जनजागृति अभियान में प्रमुख रूप से दूधनाथ, इन्द्रदेव, हरिहर यादव, रामप्रीत, यशवन्त, रामकिसुन, बाबूराम, लालू प्रसाद, मोहन साहनी, हरिलाल यादव, जगदम्बा प्रसाद, डॉ. राम आश्रय, राजुली देवी, समीक्षा, निर्मला, शिक्षा, आशा, शनिचरी देवी, मंगरी देवी, बासदेई, शारदा देवी, कलावती देवी, कौशल्या देवी, रुगदी देवी आदि शामिल थीं।

23 मार्च के अवसर पर रेल मजदूर अधिकार मोर्चा की विचार-गोष्ठी

शोषण विहिन समाज की स्थापना ही मेहनतकश वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है!

गोरखपुर (बिगुल प्रतिनिधि)। भूमण्डलीकरण के इस दौर में, जब राज्यसत्ता का मजदूर-विरोधी, घोर जनविरोधी और निरंकुश चरित्र नंगा हो चुका है तब लूट पर टिकी इस व्यवस्था का खात्मा करके, शोषणविहीन समाज की स्थापना का अन्तिम लक्ष्य हासिल करने के लिए संघर्ष ही मेहनतकश जनता के लिए एकमात्र रास्ता है।

यह विचार रेल मजदूर अधिकार मोर्चा द्वारा शहीद-ए-आजम भगतसिंह के शहादत दिवस (23मार्च) के अवसर पर, "भगतसिंह का सपना, आज का मजदूर आन्दोलन - दशा और दिशा" विषय पर आयोजत विचार-गोष्ठी में उभर कर आई।

गोष्ठी में अपने विचार प्रकट करते हुए **रेल मजदूर अधिकार मोर्चा** के सदस्य **श्री आदेश कुमार** ने कहा कि, देश का पूंजीवादी निजाम अपने मुनाफे को बढ़ाने के लिए साम्राज्यवाद से गठजोड़ कायम कर, उसका जुनियर पार्टनर बन चुका है। आज यह देश में मजदूरों के श्रम की खुली लूट कायम कर रहा है, उद्योगों का निजीकरण कर रहा है और श्रम कानूनों में परिवर्तन करके पूरे मजदूर आन्दोलन को कुचलने की साजिश कर रहा है।

श्री कुमार ने आगे कहा कि, आज समूचा मजदूर आन्दोलन खण्ड-खण्ड में बटा हुआ है। लम्बे समय से सिर्फ बोनस, भत्ते की लडा़ई लड़ने वाली संशोधनवादी और अर्थवादी यूनियनों ने इसे भीतर से खोखला बना दिया है। ऐसे में, ट्रेड यूनियन आन्दोलन का क्रान्तिकारीकरण करने के साथ ही मजदूर वर्ग को सामाजिक परिवर्तन के उस दुरूह कार्य से जोड़ना होगा, जिसका सपना शहीदे आजम भगतसिंह ने देखा था। एक ऐसा समाज जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढांचे पर उत्पादन करने वाले का यानी श्रमिक वर्ग का राज हो।

श्री वीरेन्द्र कुमार ने कहा कि, मजदूर वर्ग पर आज दोहरी मार पड़ रही है, एक तरफ वह सरकार द्वारा जारी कानूनी दमन झेल रहा है तो दूसरी तरफ ट्रेड यूनियन नेताओं की गद्दारी। उन्होंने आह्वान किया कि ऐसे नाजुक हालात में हमें खुद ही संघर्ष के लिए आगे आना होगा और आपस में जुझारू एकजुटता कायम करनी होगी।

गोष्ठी में बोलते हुए **श्री रामधनी राम** ने कहा कि, पिछले पचास वर्षों के दौरान सभी चुनाववाज पार्टियों ने मजदूरों को जाति के आधार पर बांटने का ही काम किया है जिससे उनके भीतर भी जाति की भावना घर कर गयी है। इसने भी मजदूर आन्दोलन को कमजोर किया है। छूआ-छूत, जातिवाद की समस्या का समाधान शहीद भगतसिंह के विचारों के आधार पर समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण में ही संभव है।

गोष्ठी में बड़ी संख्या में मजदूर-कर्मचारी उपस्थित थे और उन्होंने मजदूर आन्दोलन और ट्रेड यूनियन आन्दोलन से संबंधित ढेरों सवाल पूछे। गोष्ठी का संचालन **श्री अरुण कुमार** ने किया। इस अवसर पर एक पोस्टर प्रदर्शनी भी लगायी गयी।

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

• शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ • मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ • जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर • विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर • विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर • ओमप्रकाश, बाबा का पुरवा (पुंराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ • जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 7) • राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ • विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरी काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ • डी.सी. वर्मा, बी-118, आजादनगर, कैम्पबेल रोड, लखनऊ • देवेन्द्र प्रताप, द्वारा श्री इन्द्र सिंह रावत, आल्मा काटेज, 7, मल्लीताल, नैनीताल • ललित सती, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) • कृष्णगोविन्द सिंह, बी-13, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू., वाराणसी • प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, लंका वाराणसी • राजीव वर्मा द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी.पी. 82, पटेलनगर, मुगलसराय, वाराणसी • राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोंनभद्र • सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, 9, रफी मार्ग, नई दिल्ली • एतंकाद अहमद, डिपार्टमेंट ऑफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली • पुस्तक मण्डप, दिल्ली विश्वविद्यालय कोआपरेटिव स्टोर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली • एस.के. शर्मा, 282 बी, रेलवे कालोनी, गढ़हरा, बेगूसराय • सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो-827012 • गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, बेगूसराय • विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 1835, सिल्वर ओक अपार्टमेंट, नेपियर रोड, जबलपुर • समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना • पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता • शर्मा बुक स्टाल थाना रोड, चराली, तिनसुकिया • संजय श्रीवास्तव, 221, उत्तरी सुन्दर वास, गंगा फ्लोर मिल, उदयपुर, राजस्थान • नरमिण्डर सिंह, शहीद भगतसिंह विचार मंच, हरियाणा, ग्राम/पो. सन्तनगर, जिला-सिरसा • प्रमोद कुमार द्वारा रामनरेश पाल, आदर्श नगर, गली नं. 6 म.नं. 2272, लुधियाना • डी.सी. जोशी, (टीपीसी) रिमोट कंट्रोल बिल्डिंग, डिवीजनल कंट्रोल, डीआरएम आफिस, मध्य रेलवे, नागपुर • राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग

नेपाल
• पुस्तक पत्र-पत्रिका बिक्री-वितरण केन्द्र डिल्ली बाजार ओकालो, काठमांडू • विशाल पुस्तक सदन, बिजुआर बाजार प्यूठान, राप्ती अंचल • विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपन्देही

भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याएं : एक बहस

वामपंथी शिविर में बिखराव के बुनियादी कारण

'बिगुल', फरवरी' 99 अंक में प्रकाशित साथी पी. आर. हरणे के पत्र और सम्पादकीय टिप्पणी में जो प्रश्न उठाये गये हैं वे आज बुनियादी महत्व के हैं। मजदूर अखबार 'बिगुल' द्वारा वामपंथी आन्दोलन के बुनियादी प्रश्नों पर बहस की शुरुआत स्वागतयोग्य है। इस बहस को आगे बढ़ाने के ध्येय से मैं मुख्य प्रश्नों पर अपने विचार रखना चाहता हूं।

इससे पहले कि मुख्य प्रश्नों पर अपना विचार रखूं, मार्क्सवाद की 'त्रुटियों-सीमाओं' की चर्चा करने वाली फैशनेबल धारा की त्रुटियों-सीमाओं पर अपनी बात रखना चाहूंगा। जिस समय विश्व वामपंथी आन्दोलन एक गम्भीर चुनौती के दौर से गुजर रहा है, ठीक उसी समय पूंजीवाद के दलाल बुद्धिजीवियों ने मार्क्सवाद पर चौतरफा हमला बोल दिया है। लाल झंडा लेकर संसदीय सुअरबाड़े की राजनीति करने वाली तमाम नकली वामपंथी पार्टियों ने भी अनुकूल अवसर देखकर मार्क्सवाद में "संशोधन" करते हुए उसकी बुनियादी अंतर्वस्तु को — सशस्त्र क्रान्ति और सर्वहारा अधिनायकत्व को जोर-शोर से खारिज करना तथा "बाजार समाजवाद" का अनोखा बाजा बजाना शुरू कर दिया है। महत्वपूर्ण बात यह है कि ये निठल्ले पूंजीवादी चाकर, मार्क्स की किसी भी रचना में प्रस्तुत बुनियादी सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं को छूते भी नहीं, सिर्फ आवारा कुत्तों की तरह भूंकते रहते हैं। ये नहीं बताते कि '**पूंजी**' के तीनों खंडों में मार्क्स द्वारा प्रस्तुत पूंजीवादी व्यवस्था की आलोचना में क्या खामी है, अतिरिक्त मूल्य के सिद्धन्त में क्या खोट है, द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त आज मानव समाज और मानव इतिहास का वस्तुगत विश्लेषण कर पाने में कैसे अक्षम है! यह प्रस्थापना कि पूंजीवाद अपनी आंतरिक गति से ही नियत समयान्तरालों पर मंदी के दुष्चक्र में फंसकर उत्पादक शक्तियों को तबतक तबाह-बर्बाद करता रहेगा जबतक उसी की व्यवस्था के अन्दर जन्मा सर्वहारा वर्ग संगठित होकर क्रान्ति के जरिये उस पूंजीवाद को नष्ट करके समाजवाद की स्थापना नहीं कर देता, कैसे आज गलत साबित हो रहा है। इसके उलट, आज पूरा पूंजीवादी विश्व न उबरपाने वाले मंदी की चपेट में फंसा है। यह कि मानव सभ्यता का आज तक का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है, कि पूंजीवादी जनतंत्र सारत: पूंजीपति वर्ग की शेष जनता पर तानाशाही है, कि पूंजीवादी समाज में चल रहे वर्ग-संघर्षों का परिणाम मजदूर वर्ग द्वारा बलात् राज्यसत्ता पर काबिज होने तथा उसके अधिनायकत्व की स्थापना तक जायेगा, आज कैसे गलत है! सच तो यह है कि इन प्रश्नों का कोई उत्तर न तो पूंजीपति वर्ग के पास कभी था और न आज है! पुराने पिटे-पिटाये विचारों को रोज नये-नये रंगों में मार्क्सवाद के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करता हुआ वह निरन्तर अपनी मृत्यु के करीब पहुंचता जा रहा है।

दूसरी ओर, आज भारत के वामपंथी आन्दोलन में मार्क्सवादी साहित्य के अध्ययन का गंभीर अभाव है जिसकी वजह से लकड़ी की तलवार भांजने वाले पूंजीवादी विचारकों का मुंहतोड़ जवाब नहीं दिया जा रहा है। अध्ययनमनन के अभाव के कारण ही एक "वामपंथी" नेता ने यहां तक कह दिया कि मार्क्स की '**पूंजी**' पुरानी पड़ गई है और अब वे नई '**पूंजी**' लिखेंगे। उनके कार्यकर्ताओं ने इस बचकाने मसखरेपन को गंभीर सिद्धान्त के रूप में लेकर इसका खूब प्रचार किया कि उनके नेता मार्क्स के सिद्धान्त को आज के समय के हिसाब से विकसित कर रहे हैं।

ये बातें कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मार्क्सवाद अपरिवर्तनीय जड़सूत्र है। इसके ठीक विपरीत विचारधारा और दर्शन के इतिहास में मार्क्सवाद अकेली और पहली विचारधारा है जो यह स्थापित करती है कि "सिद्धान्त सूखा है और जीवन का अमर वृक्ष हरा।" मार्क्सवाद पहली बार सिद्धान्त और व्यवहार की एकता स्थापित करता है। इन्हीं प्रस्थापनाओं को आधार बनाकर लेनिन और माओ त्से तुङ ने क्रान्तिकारी प्रयोगों से गुजरते हुए मार्क्सवादी विज्ञान को उन्नत किया। क्रान्तिकारी व्यवहार से पूरी तरह कटकर पूंजीपति वर्ग की गुलामी करने वाले अकादमिक बुद्धिजीवी जब ऐसा करने की कोशिश करके आम जन को गुमराह करते हैं तो टिटिहरी की भांति दिखते हैं जो इस भ्रम में रहता है कि आसमान गिरने पर उसे अपने पैरों से थाम लेगा।

यह कहना कि इस विशाल देश की परिस्थितियों की जटिलता के कारण छोटे-छोटे मार्क्सवादी क्रान्तिकारी ग्रुपों का एकीकरण नहीं हो पा रहा है, मेरी राय में वैज्ञानिक नजरिया नहीं है। इसका मूल कारण मार्क्सवादी विचारधारा को ठोस परिस्थितियों पर लागू कर पाने की असफलता में है, मार्क्सवादी विचारधारा की सही समझदारी के अभाव में है, संगठन के निर्माण में बोल्शेविक उसूलों और जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्तों को पूरी तरह न लागू कर पाने में है। इसके साथ ही संशोधनवादी और क्रान्तिकारी लाइन के बीच की विभाजक रेखा के धूमिल पड़ने और संशोधन के विरुद्ध चलने वाले संघर्ष के कमजोर पड़ने से भी काफी नुकसान हो रहा है। अतीत के क्रान्तिकारी अनुभव हमें बताते हैं कि क्रान्तिकारी लाइन संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष करते हुए ही आगे बढ़ी है। आज भी ऐसा ही करना होगा। मार्क्सवादी अर्थशास्त्र के बुनियादी तत्वों पर कमजोर पकड़ के चलते वस्तुगत परिस्थितियों की जटिलता के पीछे छिपे यथार्थ को समझ पाने में दिक्कत है। अधिरचना में पिछड़े सांस्कृतिक मूल्यों को देखकर सामन्ती-अर्धसामन्ती उत्पादन-सम्बन्धों की कल्पना करके "राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग" और अमीर किसानों को क्रान्तिकारी सहयोगी के रूप में मानने से आन्दोलन का बहुत नुकसान हुआ है। देश की अर्थव्यवस्था में माल-उत्पादन-प्रणाली के पूरी तरह स्थापित होने, राष्ट्रीय बाजार के गठन तथा इसके विश्व-बाजार का एक अंग-बनने के बाद, कृषि क्षेत्र में बढ़ते हुए विभेदीकरण, पूंजी निवेश और सर्वहाराकरण के एक मंजिल पर पहुंचने के बाद "जमीन जोतने वालों को" के नारे की प्रासंगिकता पूरी तरह समाप्त हो चुकी है। आंख मूदकर इस नारे के पीछे चलने से मिलने वाली असफलताओं ने तमाम विकृत राजनीतिक सोचों को जन्म दिया है, जिसमें एकता संभव ही नहीं है। आज चार वर्गों की जगह तीन वर्गों का संश्रय बनेगा और क्रान्ति की मंजिल समाजवादी क्रान्ति की है। परन्तु यही पर्याप्त नहीं है। क्रान्तिकारी जन-दिशा पर आधारित संगठन का निर्माण भी एक महत्वपूर्ण शर्त है। क्रान्तिकारी दुस्साहसवाद के आधार पर निर्मित पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता का अभाव होगा और दो लाइनों का संघर्ष चला पाना संभव नहीं होगा। ऐसे संगठन दूसरे संगठनों से सार्थक बहस चला ही नहीं सकते, इसलिए वास्तविक एकता भी संभव नहीं होगी। संक्षेप में विचारधारा, सांगठनिक लाइन और कार्यक्रम पर एकता हुए बिना गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी। अब प्रश्न यह है कि इन मुद्दों पर सार्थक बहस के लिए साथियों को कैसे प्रेरित किया जाय।

जहां तक मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी चरित्र और पूंजीवाद का कब्र खोदने वाले वर्ग के रूप में रूपान्तरण का प्रश्न है, उसे ठीक से समझना होगा। यह जरूर है कि वित्तीय पूंजी और विकेन्द्रित उत्पादन-लाइन (असेम्बली लाइन प्रोडक्शन) ने श्रम शक्ति के शोषण-उत्पीड़न के तौर-तरीकों में व्यापक बदलाव किये हैं और सर्वहारा वर्ग की मुट्ठी भर ऊपरी आबादी को घूस और सुविधायें देकर उसे यथास्थितिवादी बनाया गया है। लेकिन, इससे सर्वहारा के अतिरिक्त श्रम को लूटने की पूंजीवादी पद्धति में रंचमात्र भी बदलाव नहीं आया है। इसके अतिरिक्त, आधुनिक मशीनों, कम्प्यूटर आदि के व्यापक इस्तेमाल ने श्रमशक्ति के दोहन को दसियों गुना अधिक कर दिया है। अमीरी-गरीबी के बीच बढ़ती खाई से इसका अन्दाजा आसानी से किया जा सकता है। आज की विकेन्द्रित असेम्बली लाइन-उत्पादन-प्रणाली में सिर्फ मजदूरों की बड़ी आबादी को एक जगह इकट्ठा होने की जगह कई जगह फैला दिया जाता है जिससे मजदूरों को संगठित होने से रोका जाये, लेकिन इससे खुद पूंजीवादी उत्पादन बाधित होते-होते तबाही के कगार पर पहुंच जाता है। जापान और उत्तर कोरिया इसके उदाहरण हैं। मजदूरों की पिछड़ी हुई दृष्टि के लिए मजदूर स्वयं नहीं बल्कि क्रान्तिकारी शक्तियां जिम्मेदार हैं। औद्योगिक मजदूरों में बहुत कम विचारधारात्मक और राजनीतिक प्रचार का काम किया गया। मजदूर वर्ग को अर्थवादी और उग्र-अर्थवादी नेतृत्व का दास बना रहने दिया गया। उनके बीच से पार्टी-गठन और निर्माण का काम बिल्कुल ही नहीं किया गया। इन कार्यभारों को सुचारु रूप से अंजाम दिये बिना मजदूर वर्ग की राजनीतिक चेतना को उन्नत नहीं किया जा सकता।

रूस और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के प्रश्न को लेकर भी देश के क्रान्तिकारी शिविर में कई तरह के दृष्टिकोण मौजूद हैं। मार्क्सवाद का दृष्टिकोण इस मसले पर स्पष्ट है कि समाजवाद एक स्थाई संरचना नहीं है। पूरे समाजवाद के दौरान वर्ग-संघर्ष जारी रहता है। आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक धरातलों पर पूंजीवादी तत्वों को जन्म देने और विकसित करने वाली परिस्थिति रातों-रात समाप्त नहीं हो जाती। सर्वहारा के अधिनायकत्व में पूंजीवादी तत्वों-विचारों के खिलाफ वर्ग संघर्ष को ठीक तरह से संचालित करने में छोटी सी चूक भी पूंजीवादी पुनर्स्थापना की ओर ले जाती है।

इस गम्भीर समस्या के विभिन्न वैचारिक-दार्शनिक पहलुओं की गहरी पड़ताल के बाद माओ त्से तुङ ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति और पूरे समाजवाद के दौर में क्रान्ति की निरन्तरता की अवधारणा प्रस्तुत किया तथा उसे चीन में लागू किया। विश्व सर्वहारा चीन की उस लड़ाई को जीत तो न सका, क्योंकि इसे शुरू करने में काफी देर हो चुकी थी और जल्दी ही महान नेता माओ का निधन हो गया। इस हार के बावजूद, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की विचारधारा पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने का आज विश्व सर्वहारा के हाथ में सबसे अचूक और कारगर हथियार है। यही नहीं, इस विचारधारा की समझदारी और पूर्ण स्वीकृति क्रान्तिकारी लाइन और संशोधनवादी लाइन के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा है। क्रान्तिकारी नेतृत्व और कतारों में सांस्कृतिक क्रान्ति की व्यापक और गहरी समझदारी का अभाव भी निराशा-हताशा पैदा कर रहा है।

ऐसे में, इन महत्वपूर्ण मुद्दों पर गम्भीर बहस की शुरुआत आज के दौर का एक जरूरी कार्यभार है। इस सिलसिले में बिहार के कुछ क्रान्तिकारी संगठनों द्वारा "**समकालीन बहस**" नाम से की गयी शुरुआत का हम स्वागत करते हैं। हमारी राय है कि इस मंच को अखिल भारतीय स्तर पर गठित किया जाना जरूरी है। मजदूर अखबार 'बिगुल' द्वारा ली गई पहल कदमी को आगे बढ़ाना जरूरी है।

-संजय कुमार,
सुन्दरवास, उदयपुर

लेनिन जन्म दिवस (22 अप्रैल) के अवसर पर

लाल झंडे का गीत

सुरेश सलिल

हरदम रहेगा ऊंचा, अपना ये लाल झंडा!
लेनिन का लाल झंडा-ये बेमिसाल झंडा!

लेनिन ने इसको लेकर मेटी थी जारशाही
शोषण-टिकी हुकूमत, मजदूर की तबाही:
मजलूमो, एकजुट हो! गुंजा था खूब नारा,
सड़कों पे आ गया था परचम ले सर्वहारा।
कायम हुई थी पहली सत्ता समाजवादी
दी थी सुनाई हर सू बस एक ही मुनादी:

हरदम रहेगा ऊंचा अपना ये लाल झंडा!
लेनिन का लाल झंडा-स्तालिन का लाल
झंडा!
अपना ये लाल झंडा — ये बेमिसाल झंडा!!

दुनिया में समूची फिर तुफान एक आया
फासिज्म के खतरे ने हर ओर कहर ढाया
चर्चिल ब्रिटेन में चीखे अमरीकी थरथराये
स्तालिन की सदारत में तब लाल तरुण आये
हिटलर-मुसोलिनी ने कुत्तों की मौत पाई
आधी से अधिक दुनिया ने धुन ये गुनगुनाई:

हरदम रहेगा ऊंचा अपना ये लाल झंडा!
लेनिन का लाल झंडा-स्तालिन का लाल झंडा!
अपना ये लाल झंडा-ये बेमिसाल झंडा!!

फिर चीन के क्षितिज पर चमका था एक तारा-
'दफना दो दुश्मनों को ले हाथ में दुधारा!'
मेहनत के सरकारों को आवाज उसने दी थी
और च्यांग के मुकाबिल बंदूक हाथ ली थी
चाकर अमेरिका का ताइवान जा छिपा था
और चीन के क्षितिज पर सूरज नया खिला था:

हरदम रहेगा ऊंचा माओ का लाल झंडा!
माओ का लाल झंडा-स्तालिन का लाल झंडा!
स्तालिन का लाल झंडा-ये लेनिन का लाल झंडा!
अपना ये लाल झंडा-है बेमिसाल झंडा!!

फिर हिटलरी मुखौटा अमरीका ने था पहना
नापाक इरादों ने ही था किया बरहना।
जंगी जहाज उसके कम्बोदिया पे बरसे-
कम्बोदिया के संग-संग वियेतनाम पर भी बरसे।
पर हिंद चीन वालों ने हार नहीं मानी
सच करके दिखाने को बस एक ही जिद ठानी:

हरदम रहेगा ऊंचा हो-ची का लाल झंडा
हो-ची का लाल झंडा माओ का लाल झंडा
माओ का लाल झंडा स्तालिन का लाल झंडा
स्तालिन का लाल झंडा-ये लेनिन का लाल झंडा
हरदम रहेगा ऊंचा अपना ये लाल झंडा।

भारत में भगतसिंह सोशलिज्म से जुड़े
लेनिन ने बनाई थी जो; उस राह पे मुड़े।
बहरों को सुनाने को फल्सफा-ए-बम लिखा:
दिल्ली असेम्बली में वही फूटता दिखा।
गूंजा था मुल्क-भर में इन्कलाब का नारा
तब भी था आज भी है वही नारा हमारा-

हरदम रहेगा ऊंचा; ये इन्कलाबी झंडा!
ये इन्कलाबी झंडा, शहीदों का लाल झंडा!
शहीदों का लाल झंडा — ये लेनिन का लाल
झंडा!
हरदम रहेगा ऊंचा-ये बेमिसाल झंडा!!

इस पर ही टंकी मास्टर दा की भी कुर्बानी
इससे ही जुड़ी रुद्रदत्त की भी कहानी
गोदी पे बम्बई की कभी शान से फहरा
इससे है तिलंगाना का रिश्ता बहुत गहरा
नक्सल के जंगलों से जो हुंकार उठी थी
श्री काकुलम से विप्लवी टंकार उठी थी

माओ का लाल झंडा-स्तालिन का लाल झंडा!
स्तालिन का लाल झंडा-ये लेनिन का लाल झंडा!
हरदम रहेगा ऊंचा अपना ये लाल झंडा!
अपना ये लाल झंडा — ये बेमिसाल झंडा!!

मेहनतकशों के खून से लिखी पेरिस कम्यून की अमर कहानी

अरुण किशोर नवल

(दूसरी किश्त)

कम्यून ने जो ऐतिहासिक कदम उठाये, उन्हें लेकर वह बहुत दूर तक आगे नहीं चल सका। अपने जन्म से ही वह दुश्मनों से घिरा हुआ था, जो उसे नेस्तनाबूद करने पर तुले हुए थे। ('कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के शब्दों के अनुसार) बूढ़े यूरोप को **"कम्युनिज्म का जो हौव्वा"** 1848 में ही सता रहा था, उसे सक्षात् पेरिस में खड़ा देखकर यूरोप के सभी देशों के पूंजीपतियों के कलेजे दहल उठे थे। कम्यून को कुचलने के लिए सभी प्रतिक्रियावादी ताकतें एकजुट हो गई थीं।

पेरिस के मजदूरों के विद्रोह के ठीक पूर्व **मार्क्स** और **एंगेल्स** का यह आकलन था कि अभी इसके लिए परिस्थितियां पूरीतरह तैयार नहीं हैं। अत: उनका सुझाव था कि क्रान्ति कुछ और तैयारियों के बाद शुरू की जानी चाहिए। पर एक बार जब पेरिस कम्यून अस्तित्व में आ गया तो उन्होंने उसका क्रान्तिकारी अभिनन्दन और पुरजोर समर्थन किया।

मार्क्स ने समाजवाद के उस शिशु मॉडल का अत्यन्त बारीकी से अध्ययन किया जो पेरिस के मजदूरों ने अपनी पहलकदमी और सामूहिक रचनात्मकता से खड़ा किया था। इसके साथ ही मार्क्स कम्यून के भविष्य को लेकर लगातार बहुत अधिक चिन्तित थे और अपने सम्पर्कों तथा **इण्टरनेशनल** की फ्रांस शाखा के जरिए कम्यून को लगातार अपने सुझाव दे रहे थे।

मार्क्स यह स्पष्ट समझ रहे थे कि पेरिस कम्यून को कुचलने के लिए बिस्मार्क की जो प्रशियाई फौजें पेरिस के शहरपनाह के पास ही खड़ी थीं, वे या तो थियेर को मदद करतीं या फिर खुद ही पेरिस की ओर कूच कर देतीं। इसलिए वे लगातार राय दे रहे थे कि पेरिस कम्यून की जीत को पुख्ता करने के लिए जरूरी है कि पेरिस की कामगारों की सेना पेरिस में प्रतिक्रान्ति की हर कोशिश को कुचलकर बिना रुके वर्साय की ओर कूच कर जाये जो थियेर सरकार के साथ ही पेरिस के सभी रईसों का पनाहगाह बना हुआ था। उनका कहना था कि इससे कम्यून की जीत और पुख्ता हो जाती और सर्वहारा क्रान्ति पूरे देश में फैलाई जा सकती थी। यह भेद बाद में खुला कि थियेर के पास उस समय कुल जमा 27 हजार पस्तहिम्मत फौजी थे, जिन्हें पेरिस के एक लाख 'नेशनल गार्ड्स' चुटकी बजाते धूल चटा सकते थे।

पर पेरिस कम्यून के बहादुर कम्यूनार्ड यहीं पर चूक गये। उन्होंने पेरिस में तो मजदूर वर्ग की फौलादी सत्ता कायम की और बुर्जुआ वर्ग के साथ कोई रू-रियायत नहीं बरती, लेकिन वे भूल गये कि पेरिस के बाहर थियेर के पीछे सिर्फ फ्रांस के ही नहीं, बल्कि पूरे यूरोप के प्रतिक्रियावादी एकजुट हो रहे हैं। मार्क्स ने प्रमुख कम्यून नेताओं-**फ्रांकेल** और **वार्ल्या** को आगाह किया कि पेरिस को घेरने के लिए थियेर और प्रशियाइयों के बीच सौदेबाजी हो सकती है, अत: प्रशियाई लश्करों को पीछे धकेलने के लिए मोंत्मार्त्र की उत्तरी पाख की किलेबंदी कर लेनी चाहिए। मार्क्स इस बात को लेकर बहुत चिंतित थे कि कम्यून वाले अपने को महज बचाव ही बचाव तक सीमित रखकर बेशकीमती समय गंवा रहे हैं और वर्साय वालों को अपने सैन्यबल की किलेबंदी कर लेने का मौका दे रहे हैं। उन्होंने कम्यूनार्डों को लिखा कि **प्रतिक्रियावादी की मांद को ध्वस्त कर डालिए, फ्रांसीसी राष्ट्रीय बैंक के खजाने जब्त कर लीजिए और क्रान्तिकारी पेरिस के लिए प्रांतों का समर्थन हासिल कीजिए।**

मार्क्स को यह भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तों पर गठित एक पार्टी का अभाव उन ऐतिहासिक घड़ियों में कम्यून की गतिविधियों को बुरीतरह प्रभावित कर रहा था। इंटरनेशनल की फ्रांस शाखा सर्वहारा वर्ग का राजनीतिक हरावल बनने से चूक गई थी। उसके अंदर मार्क्सवादी विचारधारा के लोगों की संख्या भी बहुत कम थी। फ्रांसीसी मजदूरों में सैद्धान्तिक पहलू बहुत कमजोर था। उस समय तक '**कम्युनिस्ट घोषणापत्र**', '**फ्रांस में वर्ग संघर्ष**', '**पूंजी**' आदि मार्क्स की प्रमुख रचनाएं अभी फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित भी नहीं हुई थीं।

कम्यून के नेतृत्व में बहुतेरे ब्लांकीवादी और प्रूधोंवादी शामिल थे, जो मार्क्सवादी सिद्धान्तों से या तो परिचित ही नहीं थे, या फिर उसके विरोधी थे। आम सर्वहाराओं द्वारा आगे ठेल दिये जाने पर उन्होंने सत्ता हाथ में लेने के बाद बहुतेरी चीजों को सही ढंग से अंजाम दिया और आने वाली सर्वहारा क्रान्तियों के लिए बहुमूल्य शिक्षाएं दीं, पर अपनी राजनीतिक चेतना की कमी के कारए उन्होंने बहुतेरी गलतियां भी कीं।

कम्यूनार्डों की एक अहम गलती यह थी कि वे दुश्मन की शांतिवार्ताओं की धोखाधड़ी के शिकार हो गये और दुश्मन ने इस बीच युद्ध की तैयारियां मुकम्मिल कर लीं। दुश्मन का पूरीतरह सफाया न करना, वर्साय पर हमला न करना और क्रान्ति को पूरे देश में न फैलाना कम्यून वालों की सबसे बड़ी भूल थी और सच यह है कि नेतृत्व में मार्क्सवादी विचारधारा के अभाव के चलते यह गलती होनी ही थी।

"जब वर्साय अपने छुरे तेज कर रहा था, तो पेरिस मतदान में लगा हुआ था; जब वर्साय युद्ध की तैयारी कर रहा था तो पेरिस वार्ताएं कर रहा था।" फलत: 1871 की मई आते-आते थियेर के सैनिकों ने पेरिस पर हमला बोल दिया। वर्साय के लुटेरों की भाड़े की सेना का कम्यूनार्डों ने जमकर मुकाबला किया और एकबारगी तो उसे पीछे भी धकेल दिया, पर वर्साय की सेना पेरिस की घेरेबंदी करके गोलाबारी करती रही। इसी दौरान प्रशा ने फ्रांस के बंदी बनाये गये दसियों हजार सैनिकों को रिहा करके थियेर की भारी मदद की दी। थियेर की सेना दक्षिणी मोर्चे के दो किलों को जीतकर पेरिस की दहलीज पर पहुंच गई। प्रशा की सेना ने भी आगे बढ़ने में उनकी परोक्ष मदद की। 21 मई 1871 को वर्साय के दस्युदल अपने कसाइयों के छुरों के साथ पेरिस में घुस पड़ा। शहर की सड़कों-चौराहों पर और विशेषकर मजदूर बस्तियों में घमासान युद्ध हुआ। आखिरकार, 8 दिनों के बेमिसाल बहादुराना संघर्ष के बाद पेरिस के बहादुर सर्वहारा योद्धा पराजित हो गये। इस खूनी सप्ताह में 26,000 कामगार कम्यून की रक्षा करते हुए शहीद हो गये। विजयी प्रतिक्रियावादियों ने सड़कों पर दमन का जो ताण्डव किया, वह बेमिसाल था। नागरिकों को कतारों में खड़कर, हाथों के घट्ठों को देखकर कामगारों को अलग करके गोली मार दी जाती थी। गिरफ्तार लोगों के अतिरिक्त चर्च में शरण लिये लोगों और अस्पताल में घायल पड़े सैनिकों को भी गोली मार दी गई। उन्होंने बुजुर्ग मजदूरों को यह कहते हुए गोली मार दी कि 'इन्होंने बार-बार बगावतें की हैं और ये खांटी अपराधी हैं।' औरत मजदूरों को यह कहकर गोली मार दी गई कि ये "स्त्री अग्नि बम" हैं और यह कि ये 'सिर्फ मरने के बाद ही' औरतों जैसी लगती हैं। बाल मजदूरों को यह कहकर गोली मार दी गई कि 'ये बड़े होकर बागी बनेंगे।' यह नरसंहार पूरे जून के महीने चलता रहा। पेरिस लाशों से पट गया। सैन नदी खून की नदी बन गई। कम्यून खून के समंदर में डुबो दिया गया। कम्यूनार्डों के रक्त से इतिहास ने मजदूरों के लिए यह कड़वी शिक्षा लिखी कि **सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति को अंत तक चलाना होगा। सत्ता न तो शांतिपूर्वक मिलेगी, न ही शांतिपूर्वक उसकी हिफाजत की जा सकेगी। कम्यून की यह शिक्षा थी कि भागते हुए डकैतों का अंत तक पीछा किया जाना चाहिए, पानी में डूबते चूहों को तैरकर किनारे आने का मौका नहीं देना चाहिए, दुश्मन को फिर से दम नहीं हासिल करने देना चाहिए और तबतक चैन की सांस नहीं लेनी चाहिए जबतक पूंजीवाद का दुश्मन कहीं किसी भी कोने-अंतरे में जीवित हो।** पेरिस कम्यून के बाद भी, विश्व इतिहास में मजदूर वर्ग जब-जब इन शिक्षाओं को भूला, तब-तब उसे शिकस्त मिली। काउत्स्की, अलब्राउडर, टीटो, ख्रुश्चेव और देङ सियाओ-पिङ विश्व सर्वहारा की क्रान्तिकारी सतर्कता को कमजोर करते हुए यह बताने की कोशिश करते रहे कि बुर्जुआ वर्ग को समझा-बुझाकर, चुनाव में हराकर, जनमत का दबाव बनाकर सर्वहारा वर्ग सत्ता ले सकता है। इसीलिए वे गद्दार थे, समाजवादी मुखौटे वाले पूंजीवादी थे, संशोधनवादी थे, पूंजीवादी राह के राही थे। भारत में भी **भाकपा, माकपा, भाकपा (मा-ले)** और तमाम ऐसे चुनावी वामपंथी ऐसे ही रंगे सियार हैं।

❑

पेरिस कम्यून के शहीदों ने अपने रक्त से एक अमिट इतिहास लिख डाला, सर्वहारा वर्ग की आगे की क्रान्तियों के मार्गदर्शन के लिए उन्होंने बहुमूल्य शिक्षाएं दीं और अपनी शहादतों से रोशनी की एक मीनार खड़ी कर दी।

कम्यून के जीवन-काल में ही **कार्ल मार्क्स** ने लिखा था: **"यदि कम्यून को नष्ट भी कर दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं, जबतक मजदूर वर्ग मुक्त नहीं हो जाता, तबतक ये सिद्धान्त बार-बार प्रकट होते रहेंगे।"** मजदूरों की पहली हथियारबन्द बगावत और पहली सर्वहारा सत्ता की अहमियत के नजरिए से ही मार्क्स ने कहा था, **"18 मार्च का गौरवमय आन्दोलन मानव जाति को वर्ग-शासन से सदा के लिए मुक्त कराने वाला महान सामाजिक क्रान्ति का प्रभात है।"**

दुनिया भर के मजदूरों के लिए इसीलिए पेरिस कम्यून की वर्षगांठ एक त्यौहार है, जैसा कि एंगेल्स ने काफी पहले कम्यून की इक्कीसवीं वर्षगांठ के अवसर पर ही बताया था, **"बुर्जुआ वर्ग को अपनी 14 जुलाई या 22 सितंबर का उत्सव मनाने दो। सर्वहारा वर्ग का त्यौहार तो सभी जगह हमेशा 18 मार्च ही होगा।"**

मजदूर वर्ग आज भी पेरिस कम्यून को इसी रूप में याद करता है, इसकी जरूरी शिक्षाओं से सबक लेता है और आगे डग भरने के मंसूबे बांधता है।

आइये, निचोड़ के तौर पर पेरिस कम्यून की जरूरी शिक्षाओं की संक्षिप्त चर्चा एक बार फिर कर ली जाये।

(1) पेरिस में कम्यून की पराजय के दो दिनों बाद, मार्क्स ने 30 मई, 1871 को **पहले इण्टरनेशनल** की सामान्य परिषद की बैठक में कम्यून का मूल्यांकन करते हुए एक रिपोर्ट पढ़ी। यही रिपोर्ट 'फ्रांस में गृहयुद्ध' शीर्षक प्रसिद्ध कृति है, जो आज भी हम सबके लिए एक बेहद जरूरी किताब है।

मार्क्स ने कम्यून की परिस्थितियों, कारणों और अनुभवों का निचोड़ निकालते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि **"मजदूर वर्ग बनी-बनाई राज्य मशीनरी को ज्यों का त्यों हाथ में नहीं ले सकता और उसे अपना मकसद पूरा करने के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता।"** उन्होंने बताया कि सर्वहारा वर्ग को पुरानी राज्य मशीनरी को **"तोड़ने"** और **"चकनाचूर करने के लिए"** क्रान्तिकारी हिंसा का इस्तेमाल करना चाहिए तथा **"सर्वहारा अधिनायकत्व को लागू करना चाहिए।"**

इसतरह मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून के अनुभवों के आधार पर क्रान्ति के विज्ञान में एक महत्वपूर्ण इजाफा किया, जैसा कि **लेनिन** ने बतलाया था कि **मार्क्सवादी वह नहीं है जो सिर्फ वर्ग संघर्ष को मानता है, बल्कि वह है जो वर्ग-संघर्ष के साथ सर्वहारा अधिनायकत्व को भी मानता है।**

मार्क्स ने बुर्जुआ और सर्वहारा राज्यसत्ता के प्रश्न पर जो मौलिक विचार रखा तथा लेनिन से जिसे आगे बढ़ाया, उसका स्पष्ट प्रस्थान बिन्दु पेरिस कम्यून की शिक्षाओं से ही होता है। मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि **"सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला अवयव सर्वहारा वर्ग की सेना है। मजदूर वर्ग को अपनी मुक्ति का अधिकार युद्धभूमि में प्राप्त करना चाहिए।"**

पेरिस कम्यून की असफलता का निचोड़ निकालते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने यह और अधिक स्पष्ट किया कि सर्वहारा वर्ग की सत्ता शस्त्रबल से हासिल होती है और इसी के सहारे कायम रह सकती है। यह तभी कायम रह सकती है जबकि बुर्जुआ वर्ग की सत्ता को ध्वस्त करने के बाद भी उसे संभलने का मौका न दिया जाये और उसके समूल नाश के लिए जंग जारी रखी जाये।

आज भी यह सच है। सर्वहारा वर्ग को आर्थिक मांगों और राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए पूंजीवादी व्यवस्था की असलियत तथा अपने ऐतिहासिक मिशन को समझने में चाहे जितना भी समय लगे, चाहे वह संघर्ष के तमाम रूपों के साथ ही प्रचार और भंडाफोड़ के लिए कानूनी संघर्षों का इस्तेमाल तथा चुनावों को 'टैक्टिकल' इस्तेमाल भी क्यों न करे, अंतिम फैसला बल-प्रयोग से, सशस्त्र क्रान्ति से ही होगा और वह क्रान्ति तभी टिकी रहेगी, जब दुश्मनों पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व कायम हो। आगे चलकर लेनिन के नेतृत्व में रूस की समाजवादी क्रान्ति ने इसी शिक्षा को साकार किया। चीन में भी 1949 में यही हुआ और फिर 1966 से 1976 के बीच **महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति** के दौरान **माओ** ने पेरिस कम्यून और अक्टूबर क्रान्ति की सर्वहारा अधिनायकत्व संबंधी शिक्षाओं को आगे बढ़ाते हुए यह निष्कर्ष दिया कि **समाजवाद तभी टिका रह सकता है जबकि बुर्जुआ वर्ग पर चौतरफा सर्वहारा अधिनायकत्व कायम रखते हुए क्रान्ति को लगातार जारी रखा जाये।**

इसीलिए सर्वहारा क्रान्तिकारियों का मानना है कि विश्व सर्वहारा क्रान्ति की विजय यात्रा के तीन सबसे महत्वपूर्ण मील के पत्थर हैं- **पेरिस कम्यून, अक्टूबर 1917 की रूसी क्रान्ति और चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति।**

(2) सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक **मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून में जनसमुदाय की क्रान्तिकारी पहलकदमी को विशेष महत्व दिया। कम्यून के अनुभव हमें बताते हैं कि सर्वहारा क्रान्ति और सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय के लिए जरूरी है कि लाखों-करोड़ों जनसमुदाय की क्रान्तिकारी सक्रियता पर भरोसा रखा जाये और जन-समुदाय की इतिहास का निर्माण करने की महान शक्ति को पूर्ण रूप से उजागर किया जाये।**

नकली वामपंथी जनता से डरते हैं और चाहते हैं कि वह सोई रहे। अतिवामपंथी दुस्साहसवादी लाइन को मानने वाले लोग जनता को मूढ़मति मानते हैं और **खुद को उनका बुद्धमान और बहादुर उद्धारक!** क्रान्तिकारी जनदिशा बताती है कि व्यापक मेहनतकश जनता की शक्ति और बुद्धिमत्ता में भरोसा करके उसे जागृत, गोलबंद और संगठित किया जाना चाहिए।

पेरिस कम्यून में शामिल मेहनतकशों ने राजकाज चलाकर, बेहद महत्वपूर्ण व मौलिक फैसले लेकर अपनी अपार सर्जनात्मकता का परिचय दिया था। यदि उनका मार्गदर्शन करने वाली सही विचारधारा से लैस एक क्रान्तिकारी पार्टी होती तो यह प्रयोग आगे बढ़ सकता था। पर अपने छोटे से जीवन में भी कम्यून ने यह तो साबित ही कर दिखाया की पुरानी दुनिया को खाक में मिलाने के बाद व्यापक मेहनतकश अवाम की सामूहिक शक्ति और सामूहिक मेधा एक नई दुनिया का भी ढांचा खड़ा कर सकती है, एक नये जीवन का भी ताना-बाना बुन सकती है।

(3) मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून का सार-संकलन करते हुए यह नतीजा निकाला था कि, **"सम्पत्तिवान वर्गों की संयुक्त सत्ता के खिलाफ अपने संघर्ष में मजदूर वर्ग अपने को, सम्पत्तिवान वर्गों द्वारा स्थापित तमाम पुरानी पार्टियों के विरुद्ध और उनसे भिन्न, एक राजनीतिक पार्टी में संगठित करके ही, एक वर्ग की हैसियत से कार्रवाई कर सकता है।"**

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, पेरिस कम्यून की असफलता का बुनियादी कारण यह था कि उस समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों में मार्क्सवाद मजदूर आंदोलन की मार्गदर्शक विचारधारा के रूप में अभी स्थापित नहीं हो पाया था और ऐसी एक सर्वहारा क्रान्तिकारी पार्टी अभी स्थापित नहीं हो पाई थी जिसकी विचारधारा मार्क्सवाद हो। ऐसी स्थिति में पेरिस कम्यून की असफलता एक ऐतिहासिक नियति थी। एक क्रान्तिकारी पार्टी के अभाव और कम्यून में **लांकी** और **प्रूधों** के गलत विचारों को मानने वालों के प्रमुख स्थान पर होने के कारण ही **माओ** ने एक बार कहा था कि कम्यून यदि जीवित भी रह जाता तो (विचारधारा और पार्टी के अभाव में) एक प्रतिक्रियावादी कम्यून बन जाता। बहरहाल, कम्यून की असफलता की ऐतिहासिक नियति ने ही आगे की सर्वहारा क्रान्तियों की सफलता की बुनियादी शर्त पैदा की।

मार्क्स और एंगेल्स की पार्टी-विषयक शिक्षाओं को आगे बढ़ाते हुए ही लेनिन एक सही क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी का सिद्धान्त विकसित कर सके और ऐसी पार्टी खड़ी करके बोल्शेविक क्रान्ति को संभव बना सके। चीन की क्रान्ति भी इसीलिए संभव हो सकी।

आज जब सर्वहारा वर्ग सर्वहारा क्रान्ति का नया चक्र शुरू करने की भूमिका तैयार कर रहा है तो यह बुहनयादी शिक्षा उसे पूरीतरह आत्मसात् कर लेनी होगी। भारत के सर्वहारा क्रान्तिकारियों और मजदूर वर्ग को भी यह शिक्षा गांठ बांध नेनी होगी कि क्रान्ति के लिए एक देशस्तर की नई, क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी खड़ी करना सर्वोपरि आवश्यकता है जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद को अपना मार्गदर्शक बनाये, इसकी सर्वव्यापी सच्चाई को अपने देश की ठोस परिस्थितियों के साथ व क्रान्तिकारी कार्यों के ठोस व्यवहार के साथ मिलाकर एक सही कार्यदिशा तय करे व उसे अमल में लाये। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि लम्बे प्रयासों के बाद जब एक बार जब सही लाइन पर मजबूत पकड़ हो जाती है और उसे लागू किया जाने लगता है तो कमजोर ताकत भी मजबूत और व्यापक हो जाती है तथा कुछ-कुछ खास मोड़ों पर तो ताकत में चमत्कारी बढ़ोत्तरी सभी गणनाओं-अनुमानों को पीछे छोड़ देती है। केवल तभी व्यापक मेहनतकश अवाम

(पेज 5 पर जारी)

अक्टूबर क्रान्ति की शिक्षाएं और हमारा समय, हमारा देश

शशि प्रकाश

(चौथी और समापन किश्त)

आज इस सदी के अँतिम वर्षों में पीछे मुड़कर अक्टूबर क्रान्ति की ऐतिहासिक महत्ता के बारे में जब हम सोचते हैं तो निचोड़ के तौर पर इस युगान्तरकारी घटना की कुछ ऐसी अहम शिक्षाओं को रेखांकित किया जा सकता है, जिन्हें उत्तरवर्ती क्रान्तियों ने भी अपनी सफलताओं-असफलताओं से सत्यापित किया।

(1) अक्टूबर क्रान्ति ने मार्क्सवाद की इस बुनियादी शिक्षा को सत्यापित किया और यह आज भी सही है कि सर्वहारा क्रान्तियां महज बगावत नहीं बल्कि सचेतन क्रान्तियां ही हो सकती हैं। इसके लिए मजदूर वर्ग के हिरावल के तौर पर देश स्तर पर एक ऐसी एकीकृत क्रान्तिकारी पार्टी का होना अनिवार्य है, जो प्रकृति और समाज के अध्ययन के सारतत्व के रूप में अर्जित सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान से — मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा से लैस हो।

(2) सर्वहारा वर्ग की पार्टी विचारधारात्मक शुद्धता सतत् विचारधारात्मक संघर्षों से ही अर्जित कर सकती है। एक पूंजीवादी समाज के भीरत ही पैदा होने और काम करने के चलते पार्टी में गैरसर्वहारा प्रवृत्तियां और विचार लगातार सिर उठाते रहते हैं। केवल आलोचना-आत्मलोचना और दो लाइनों के संघर्ष के द्वारा ही इनका सफाया किया जा सकता है। लेनिन ने यदि मेंशेविकों, प्लेखानोव और काउत्स्की के खिलाफ संघर्ष नहीं किया होता तो क्रान्ति करने के बजाय बोल्शेविक पार्टी भी सी. पी. आई.-सी. पी. एम. जैसी संशोधनवादी, अर्थवादी, संसदमार्गी पार्टी बनकर रह गई होती। सामाजिक जनवाद या दक्षिणपंथी अवसरवाद से हर लड़ाई लड़कर ही हम भी आज सही ढंग से एक क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने की दिशा में एक-एक कदम आगे बढ़ सकते हैं। लेनिन की इस शिक्षा को आज याद रखना जरूरी है कि मार्क्सवादी केवल वही है जो वर्ग-संघर्ष के साथ ही सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को भी स्वीकार करता है। आज कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर के भीतर भी दक्षिणपंथी सिद्धान्त और व्यवहार की प्रवृत्तियां और रुझानें बहुतायत में सिर उठा रही हैं, कठिन विचारधारात्मक संघर्ष में इनका निर्मूलन किये बगैर क्रान्तिकारियों की देशव्यापी एकता कतई नहीं कायम की जा सकती।

(3) उपरोक्त बिन्दु के साथ ही यह याद रखना जरूरी है कि अतिवामपंथी भटकाव भी साररूप में मध्यवर्गीय जल्दबाजी, अराजकतावाद या जनता में आस्था न रखने की ही प्रवृत्ति से पैदा होता है और लेनिन ने इसे "बचकाना मर्ज" की संज्ञा दी थी। सर्वहारा वर्ग और उसके सहयोगी वर्गों के व्यापक जनसंगठन खड़ा किये बगैर, उनकी आर्थिक और राजनीतिक मांगों को लेकर संघर्ष करते हुए क्रान्तिकारी प्रचार द्वारा उनको तैयार किये बगैर, किसी भी रूप में मुट्ठीभर क्रान्तिकारी यदि अपनी कुर्बानियों और बहादुरी के बूते पर राज्यसत्ता पलट देना चाहते हैं या यह सोचते हैं कि उनके संघर्षों-कुर्बानियों से प्रेरित जनता इंकलाब के लिए उठ खड़ी होगी तो यह गलत है। यह वामपंथी दुस्साहसवादी सोच है। नक्सलबाड़ी के शानदार जनउभार के बाद, इसी भटकाव के चलते पार्टी-निर्माण व गठन तथा क्रान्तिकारी जन-कार्य भारी ऐतिहासिक नुकसान उठा चुका है। आज भी, हालांकि दक्षिणपंथी भटकाव का खतरा मुख्य है, पर अतिवामपंथी, अराजकतावादी भटकाव की धाराएं क्रान्तिकारी आन्दोलन में मौजूद हैं। लेनिन की शिक्षाओं के आलोक में इनके विरुद्ध संघर्ष भी जरूरी है।

(4) हमारे देश में आज औद्योगिक सर्वहारा वर्ग लगभग पूरीतरह अर्थवाद और ट्रेड-यूनियनवाद की जकड़बंदी में उलझा हुआ है। ट्रेड यूनियन आन्दोलन पूरीतरह संशोधनवादी वामपंथी दलों और पूंजीवादी पार्टियों की गिरफ्त में है। सर्वहारा वर्ग को इस जकड़बंदी से मुक्त करके ट्रेड यूनियन आन्दोलन को क्रान्तिकारी दिशा दिये बिना तथा सर्वहारा वर्ग के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई लगातार चलाये बिना न तो सर्वहारा वर्ग की सही-सच्ची पार्टी खड़ी की जा सकती और न ही सर्वहारा क्रान्ति की दिशा में एक कदम भी आगे बढ़ा जा सकता है।

भारत में एक सच्ची लेनिनवादी पार्टी खड़ी करने में वही सफल हो सकेंगे जो मजदूरों को संगठित करते हुए आर्थिक मांगों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी आन्दोलन खड़े करें और साथ ही मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई चलाते हुए उनके बीच के उन्नत तत्वों को क्रान्तिकारी पार्टी में शामिल करें। क्रान्तिकारियों को तमाम बुर्जुआ और संशोधनवादी ट्रेड-यूनियनों के भीतर क्रान्तिकारी मजदूरों के सेल और केन्द्रक गठित करके काम करना चाहिए और अवसरवादी नेतृत्व को लगातार अलग-थलग करने की कोशिश करनी चाहिए। परिस्थिति के अनुसार, विभिन्न रूपों में मजदूरों के अध्ययन मण्डल और रात्रि स्कूल भी संगठित किये जाने चाहिए। मजदूर वर्ग के अगुवा तत्वों की पार्टी-भरती के द्वारा पार्टी-निर्माण के कार्य को पुख्ता आधार देने के लिए, क्रान्तिकारी राजनीति के व्यापक प्रचार के लिए और क्रान्तिकारी ग्रुपों की कतारों तक पार्टी निर्माण एवं गठन के कार्यभार के विविध पहलुओं, समस्याओं तथा इससे जुड़ी बहसों को पहुंचाने के लिए एक क्रान्तिकारी मजदूर अखबार को भारत में भी वही भूमिका निभानी है जो रूस में '**इस्क्रा**' ने और फिर उसके उत्तराधिकारी समानधर्मा अखबारों ने निभाई।

(5) केवल वही पार्टी सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी हो सकती है जो अपने जन्मकाल से ही राज्यसत्ता के हर कोप-कहर का सामना करने के लिए तैयार हो। ऐसी पार्टी की सदस्यता सिर्फ गुप्त ही हो सकती है और वह ऐक्टिविस्ट स्तर से नीचे नहीं दी जा सकती। ऐसी पार्टी के मेरुदण्ड सिर्फ पेशेवर क्रान्तिकारी (पूरावक्ती कार्यकर्ता) ही हो सकते हैं। खुले और कानूनी दायरों में, गुंजाइश होने पर, काम करती हुई भी एक क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी पूरीतरह कानूनी और संसदीय पार्टी कदापि नहीं हो सकती। उसका ढांचा और कार्यप्रणाली हर-हमेशा गुप्त रहनी चाहिए। ऐसी पार्टी केवल जनवादी केन्द्रीयता के सांगठनिक उसूलों पर ही गठित की जा सकती है।

भारत के सर्वहारा क्रान्तिकारियों के कई ग्रुप आज लेनिन और अक्टूबर क्रान्ति की इन बुनियादी शिक्षाओं की अवहेलना कर रहे हैं। यह बेहद खतरनाक है और पतन की ओर ले जाने वाला है।

(6) अक्टूबर क्रान्ति की यह शिक्षा आज हमारे लिए बेहद उपयोगी है कि विचारधारा के प्रश्न पर अडिग रहते हुए उसी के आलोक में देश-विशेष की ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण किया जाना चाहिए और क्रान्ति का कार्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए। अक्टूबर क्रान्ति की यह मूल्यवान शिक्षा है कि उसूलों में एकदम अनम्य रहते हुए कार्यनीति या रणकौशल के प्रश्नों पर अधिकतम संभव लचीला रुख अपनाया जाना चाहिए, तभी हर परिस्थिति का क्रान्ति की तैयारी के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

(7)अपने देश की ठोस परिस्थितियों के आधार पर यह तय करना बेहद जरूरी होता है कि सर्वहारा क्रान्ति के मित्र कौन हैं और शत्रु कौन? सर्वहारा वर्ग, अपने मित्र वर्गों को — मुख्यतः गांव के गरीबों को साथ लिये बगैर, उनके साथ संयुक्त मोर्चा बनाये बगैर कतई क्रान्ति नहीं कर सकता, यह बोल्शेविक क्रान्ति की एक बुनियादी शिक्षा है।

समाजवाद की आज की हार एक अस्थायी परिघटना है। यह कुछ समय की बात है। अक्टूबर क्रान्ति की मशाल बुझी नहीं हैं बुझ ही नहीं सकती। दुनिया का सर्वहारा आगे बढ़ेगा और इसके नये संस्करण का निर्माण करेगा। पूंजीवाद के रोग और संकट लाइलाज हैं और उनका अंत समाजवाद ही करेगा — पूंजीवाद का ही अंत करके। नई शताब्दी एक ऐसे ही भूकम्पकारी युग के रूप में आ रही है।

लेनिन ने साम्राज्यवाद के दौर में पूरब को क्रान्ति के तूफान के केन्द्र के रूप में देखा था और चीन की क्रान्ति से तीन दशक पहले 'एशिया के जागरण' के चिन्ह देखे थे। साम्राज्यवादी लूट के खुला चरागाह एशिया में आज फिर एक नये जागरण के संकेत मिल रहे हैं।

क्या यह जागृति एक नई सर्वहारा क्रान्ति का सवेरा ला सकेगी? क्या सर्वहारा क्रान्तियों के नये चक्र में भारत का सर्वहारा वर्ग दुनिया के मजदूरों के अग्रिम दस्तों में शामिल हो सकेगा?- इसका जवाब हमें अपने ठोस कार्यों से देना होगा, फौलादी संकल्पों से देना होगा!

1905-07 की रूसी क्रान्ति की खून से लथपथ हार के बाद लेनिन ने अपने जीवन की एकमात्र कविता लिखी थी जिसकी अँतिम पंक्तियों के उद्दाम आशावाद को अक्टूबर क्रान्ति ने साकार कर दिखाया। विश्व सर्वहारा क्रान्तियों के पहले संस्करणों की हार के बाद, उम्मीदों से लबरेज इन पंक्तियों को हम इस विश्वास के साथ दुहराते हैं कि नई सदी की नई सर्वहारा क्रान्तियां इन्हें अवश्य साकार करेंगी क्योंकि यही इतिहास की गति है और यही इतिहास का संदेश है -

"हिम्मत से सीना तानो!
ये बुरे दिन जल्दी ही छूट जायेंगे
आजादी के दुश्मन के खिलाफ खड़े हो जाओ
एकजुट होकर!
बसन्त आयेगा ... वह आ रहा है ... वह आ रहा है
अनोखी खूबसूरत हमारी बहुवांछित
वह लाल आजादी
आगे आ रही है! देखो! इधर
हमारी ओर ...

मेहनतकशों के खून से लिखी पेरिस कम्यून की अमर कहानी

(पेज 4 से आगे)

की ताकत के आधार पर, पार्टी के नेतृत्व में सशस्त्र शक्तियां कायम हो सकती हैं और राज्यसत्ता हासिल की जा सकती है।

(4) सत्ता हासिल करने के बाद सर्वहारा अधिनायकत्व को राज्यतंत्र के अंगों-उपकरणों को पतित होने से कैसे रोका जाये, सर्वहारा सत्ता के केन्द्रों में नये बुर्जुआ तत्वों के पैदा होने को कैसे रोका जाये, सरकारी कामकाज के लिए प्राप्त सुविधाओं को विशेषाधिकार बनने से और नये नौकरशाह पैदा होने से कैसे रोका जाये?-- इन प्रश्नों पर **लेनिन** ने काफ़ी विचार किया था आगे चलकर **चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति** के दौरान जब राज्य और पार्टी के भीतर के पूंजीवादी पथगमियों के विरुद्ध संघर्ष हो रहा था तो **माओ** ने इस मसले पर विस्तृत सोच-विचार के बाद कुछ बहुमूल्य समाधान प्रस्तुत किये थे।

उस दौर में, यानी चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान अल्पजीवी पेरिस कम्यून द्वारा इस दिशा में उठाये गये विभिन्न मौलिक, अन्वेषणात्मक कदमो और विभिन्न अंतरिम, आजमाइशी कार्रवाइयों के ऐतिहासिक महत्व पर बहुत बल दिया गया था और इससे काफी कुछ सीखा गया था।

इससे काफी पहले, **फ्रेडरिक एंगेल्स** ने पिछली सदी में ही इस संबंध में लिखा था: **"राज्य और राज्य के उपकरणों के समाज के सेवक से समाज के स्वामी बनने की स्थिति में इस रूपांतरण के खिलाफ ... जो सभी पूर्ववर्ती राज्यों में अपरिहार्यतः घटित हुआ है ..., कम्यून ने दो अचूक साधनों का इस्तेमाल किया। पहला यह कि इसने प्रशासकीय, न्यायिक और शैक्षिक - सभी पदों पर नियुक्तियां सार्विक मताधिकार के आधार पर चुनाव के द्वारा कीं और इस शर्त के साथ कि कभी भी उन्हीं निर्वाचकों द्वारा (चुने गये व्यक्ति को) वापस भी बुलाया जा सकता था। और दूसरा यह कि ऊंचे और निचले दर्जे के सभी पदाधिकारियों को वही वेतन मिलता था जो अन्य मजदूरों को। . . . इसतरह प्रतिनिधि संस्थाओं के प्रतिनिधियों पर लगाये गये बाध्यताकारी अधिदेशों के अतिरिक्त (उपरोक्त दो निर्णयों द्वारा) पदलोलुपता और कैरियरवाद के रास्ते में एक प्रभावी अवरोधक लगाया गया।"**

सत्ता हासिल करने के बाद राज्य के उपकरण समाज के सेवक से समाज के स्वामी के रूप में न बदल जायें, इसकी गारण्टी करने की कोशिश में पेरिस कम्यून ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि बुर्जुआ जनवाद किसतरह एक ढकोसला होता है और किसतरह सर्वहारा जनवाद ही वास्तविक जनवाद होता है। पेरिस कम्यून का यह प्रयोग चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान एक बार फिर जोर देकर रेखांकित किया गया और इसे व्यवहार में आगे भी बढ़ाया गया। वहां भी पूंजीवादी अधिकारों पर चोट करने के लिए तनख्वाहों के अन्तर के प्रति जागरूकता पैदा की गई, सत्ता में बैठे लोगों के विशेषाधिकार कम करने पर जोर दिया गया, जनता की क्रान्तिकारी चौकसी को उन्नत किया गया, और हर स्तर पर निर्णय की प्रक्रिया में उसकी भागीदारी बढ़ाने की कोशिश की गई।

❑

मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून की दसवीं जयन्ती के अवसर पर भरपूर क्रान्तिकारी जोश के साथ यूरोपीय मजदूर वर्ग से कहा था, **"कम्यून, जो पुरानी दुनिया के शासकों के विचार में पूर्ण रूप से नष्ट हो चुका है, पहले के किसी भी समय के मुकाबले आज और ज्यादा जीवनी-शक्ति से ओतप्रोत है। इसलिए, हम आपलोगों के साथ मिलकर यह नारा बुलन्द कर सकते हैं: कम्यून जिन्दाबाद।"**

आज नई विश्व-परिस्थितियों में, एक अलग संदर्भ में, एक अलग जमीन पर, दुनिया भर के मुक्तिकामी सर्वहारा को एक बार फिर यह नारा बुलन्द करने की जरूरत है - **कम्यून जिन्दाबाद!**

विश्व पूंजीवाद के ताजा संकटों का नया चरण पूंजीपतियों-साम्राज्यवादियों के लिए सबसे अधिक गंभीर है। पूंजीवादी-बुद्धिजीवी-विचारक भी यह मान रहे हैं और यह भी मान रहे हैं कि तमाम नुस्खों और दवाओं से रोगी को सिर्फ थोड़ी देर की राहत ही मिल पा रही है। आने वाले दिनों में बड़े पैमाने पर बगावतों के भड़क उठने की आशंकाएं भी प्रकट की जा रही हैं। और सच पूछा जाये तो लातिन अमेरिका और एशिया से लेकर रूस और पूर्वी यूरोप तक इसके संकेत अभी के जनांदोलनों, उभारों, हड़तालों से ही मिलने लगे हैं कि भविष्य क्या होगा! **इतना तय है कि पूंजीवाद की मंजिल इतिहास का अंत नहीं है। पूंजीवाद अमर नहीं है।**

भूमण्डलीकरण के नये दौर में, पूरी दुनिया में, ज्यादा मुनाफा निचोड़ने के लिए 'उन्नत मशीनों पर कम से कम मजदूर' का फार्मूला लगाकर भारी आबादी को जिसतरह सड़कों पर ढकेला जा रहा है, मजदूरों के अधिकारों में जिसतरह कटौती की जा रही है, गरीब-मध्यम किसानों को जिसतरह जगह-जमीन से उजाड़ा जा रहा है, जीवन की सभी बुनियादी जरूरतों को जिसतरह खाली जेब वालों की पहुंच से दूर किया जा रहा है, धनी-गरीब का अंतर जितना नंगा होता जा रहा है, उसे लोग चुपचाप झेलते ही नहीं रहेंगे। वे उठ खड़े होंगे। यह तय है। **पूंजीवाद के पास जो एकमात्र रास्ता बचा है, उसतरह वह चल रहा है। लोग भी उसी रास्ते पर आगे बढ़ेंगे, जो उनका एकमात्र रास्ता है।**

आने वाली दुनिया के तूफानों को सर्वहारा क्रान्ति के नये संस्करणों में तब्दील करने के लिए सर्वहारा वर्ग को पेरिस कम्यून, अक्टूबर क्रान्ति और सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का झण्डा एकबार फिर उठाना ही होगा। सर्वहारा क्रान्तिकारियों के लिए जरूरी है कि मेहनतकश अवाम की विद्रोही भावना की बारूद की ढेरी तक वे विचारधारा की चेतना की चिंगारी पहुंचायें। पेरिस कम्यून की शिक्षा हमें हर तरह के सुधारवादियों-संशोधनवादियों-अर्थवादियों के खिलाफ लड़कर वर्ग संघर्ष की धार तेज करने के लिए प्रेरित करती है। पेरिस कम्यून की मशाल एक नई क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी खड़ी करने के लिए हमें राह दिखा रही है।

पेरिस कम्यून की हार के बाद जो थोड़े से कम्यूनार्ड भागकर फ्रांस से बाहर निकल पाये, उनमें से एक **यूजीन पोतिये** भी थे। 1871 की गर्मियों में लन्दन पहुंचकर पनाह लेने वाले पोतिये फरारी में रची हुई कुछ कविताएं भी अपने साथ लाये थे जो कम्यून की उस ज्वाला में धधकती कविताएं थीं, जो पराजय के बावजूद विश्व-सर्वहारा का मार्ग आलोकित कर रही थी। इन्हीं में से एक कविता यूरोप और फिर दुनिया की सभी भाषाओं में अनूदित हुई और इसकी कुछ पंक्तियां पूरी दुनिया के सर्वहारा वर्ग का संघर्ष-नाद बन गई।

'इण्टरनेशनल' नाम से प्रसिद्ध यह आह्वान गीत हर देश के मजदूर गाते हैं एक ही धुन पर! हम भी इसे गाते हैं:

उठो जागो भूखे बंदी
अब खींचो लाल तलवार
कबतक सहोगे भाई
जालिम का अत्याचार।
तेरे रक्त से रंजित क्रन्दन
अब दस दिशि लाया रंग
ये सौ बरस के बंधन
एक साथ करेंगे भंग।
यह अंतिम जंग है जिसमें
जीतेंगे हम एक साथ
गाओ इण्टरनेशनल
भव स्वतंत्रता का गान

समाप्त

'बिगुल' के लक्ष्य और स्वरूप पर एक बहस और हमारे विचार

(पेज 1 से आगे)

सर्वोपरि तौर पर आज मजदूर वर्ग के बीच विचारधारा को ले जाने की जरूरत है, क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई संगठित करने की जरूरत है, उसे सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान के मार्गदर्शन में निर्मित-गठित पार्टी की अपरिहार्य जरूरत से परिचित कराने की जरूरत है। और ऐसा मजदूर अखबार सिर्फ राजनीतिक प्रचारक ही नहीं, बल्कि 'राजनीतिक संगठनकर्ता' भी होगा। 'राजनीतिक संगठनकर्ता' होगा वह राजनीतिक संगठनकर्ताओं के माध्यम से। इस अखबार का एक-एक एजेण्ट, विक्रेता, हॉकर, प्रचारक मजदूर वर्ग का क्रान्तिकारी संगठनकर्ता होगा जो अखबार के इर्द-गिर्द मजदूरों के अध्ययन-मण्डल और प्रचार-दस्ते संगठित करते हुए उनके रोजमर्रे की जिन्दगी और आर्थिक-राजनीतिक संघर्षों में शिरकत करेगा और इस प्रक्रिया में मजदूरों की तमाम स्थापित बुर्जुआ और सुधारवादी ट्रेडयूनियनों के भीतर क्रान्तिकारी केन्द्रक या कोशिकाएं या नाभिक संगठित करने का काम करेगा। अलग से ट्रेडयूनियन की एक और दूकान खोलकर अतिवामपंथी "बचकाना मर्ज" का शिकार होने के बजाय, लेनिन की शिक्षा के अनुसार, 'हर उस जगह जाना होगा, जहां मजदूर वर्ग है!' आर्थिक प्रश्नों पर संघर्ष संगठित करना राजनीतिक प्रचार एवं कार्रवाई की अनिवार्य बुनियादी पूर्वशर्त है, पर उसकी पहली मंजिल नहीं। बोल्शेविको और मेंशेविकों के बीच अहम मतभेद का प्रश्न यह भी था। मजदूर वर्ग के आंदोलन के भीतर क्रान्ति की विचारधारा "बाहर से" डालनी होती है और मजदूर वर्ग का क्रान्तिकारी राजनीतिक अखबार यह करते हुए सर्वहारा वर्ग की पार्टी के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करता है।

हम समझते हैं कि भारतीय पूंजीवादी जनतंत्र में जबतक गुंजाइश बची हुई है, क्रान्तिकारी विचारधारात्मक प्रचार की कार्यवाई जमकर और व्यापक तथा खुले तौर पर चलानी ही चाहिए। जब यह गुंजाइश नहीं रहेगी, तब भी क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार जारी रहेगा, और तरीकों से और रास्तों से। सेंसर या बन्दिशें इस काम को कठिन बना सकती हैं, रोक नहीं सकतीं। कभी रोक भी नहीं पाई हैं।

इस पूरे परिप्रेक्ष्य में जब हम 'बिगुल' की विषयवस्तु पर सोचते हैं तो यह साफ है कि यह ज्यादातर अपेक्षाकृत उन्नत चेतना वाले उन मजदूरों को संबोधित होती है, जो सबसे पहले सर्वहारा क्रान्ति के विचार को आत्मसात् करते हैं और जिनके बीच से मजदूर आन्दोलन के हरावल पैदा होते हैं। ऐसे मजदूर पाठक जाहिरा तौर पर कम हैं, पर पूरे मजदूर आन्दोलन के लिए वे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं और विभिन्न स्तरों पर क्रान्तिकारी कोर उन्हीं से निर्मित होंगे। इन उन्नत चेतना के मजदूरों के बाद दूसरा स्तर औसत मजदूरों का है। ये मजदूर भी क्रान्तिकारी प्रचार के दायरे में आते हैं, पर अखबार के बहुतेरे अहम सैद्धान्तिक मसलों को, वे बिना अपने अधिक समझदार कामरेडों की मदद के नहीं समझ पाते। लेनिन के अनुसार, मजदूर अखबार इन औसत मजदूरों की समझ के स्तर तक अपने को नीचे नहीं लाता, बल्कि उनकी समझ के स्तर को ऊपर उठाता है।

औसत से नीचे के मजदूरों के संस्तर, अधिकांश अखबार, बल्कि मुमकिन है कि, पूरा अखबार ही नहीं समझ सकें। पर मजदूर अखबार को मजदूरों के इस संस्तर की चेतना के हिसाब से ढाला नहीं जाना चाहिए। इन तक विचारधारा, प्रचार और कार्रवाइयों के अन्य साधनों-माध्यमों से (पर्चे, पोस्टर, भाषण, नुक्कड़ नाटक-गायन आदि) पहुंचती है और ज्यादातर अपने उन्नत मजदूर साथियों के साहचर्य और संवाद से पहुंचती है। सर्वहारा वर्ग के निम्नतर संस्तरों की चिन्ता में उन्नत मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा के काम को छोड़ देने से सर्वहारा संगठनकर्ताओं की भरती बाधित होगी, पार्टी-निर्माण का कार्य बाधित होगा और निम्नतर संस्तर के मजदूर भी अपनी उसी स्थिति में पड़े रह जायेंगे।

क्रान्तिकारी व्यावहारिक हों, यह भी जरूरी है। सिर्फ सबसे पिछड़े मजदूरों के लिए, या सभी मजदूरों के लिए एक साथ, छाती पीटना किताबी आदर्शवादी बुद्धिजीवियों की फितरत होती है, हमें इससे बचना चाहिए।

कुछ क्रान्तिकारी, सहृदय बुद्धिजीवी तो ऐसे भी मिलेंगे, जो "आम लोगों" के लिए, एकदम आम मजदूरों के लिए, इसलिए लिखने पर बल देते हैं कि वे मसलों की गंभीर समझ ही नहीं रखते। चूंकि उनकी खुद की विचारधारात्मक समझ दुर्बल होती है, अतः वे "गंभीर" लेखों के बजाय "लोकप्रिय" लेखन की दुहाई देते हैं। पर इस कोशिश में वे महज लोकरंजक, सस्ता, लिजलिजा, प्रहसनात्मक सुधारवादी लेखन या जुमलेबाज़ी ही कर पाते हैं, क्योंकि आम लोगों को समझ में आने लायक सही, वैज्ञानिक बात लिखने के लिए मामले की और अधिक गहरी-गंभीर, तथा साथ ही व्यावहारिक समझ की ही जरूरत होती है। वरना सर्वहारा के लिए लिखा जाने वाला सारा साहित्य "चना जोर गरम" का गाना बनकर रह जायेगा। बहरहाल, इस कोटि के बुद्धिजीवी "ज्ञान-प्रसारकों" पर अलग से फिर कभी चर्चा की जायेगी।

एक और सूचना जो हम अपने पाठकों और बिरादरों तक पहुंचाना चाहते हैं, वह यह कि आज 'बिगुल' की कम से कम पचहत्तर फीसदी खपत मजदूरों के बीच होती है और मुख्यतः मजदूरों की मदद के बूते पर ही अपने पूरे ताने-बाने सहित यह आर्थिक तौर पर भी स्वावलम्बी है। मजदूर पाठक मुख्यतः हमसे यह मांग करते हैं कि अखबार में संघर्षों और उनकी जिन्दगी के हालात पर ठोस रपटें और अधिक होनी चाहिए। यह मांग हम पूरीतरह स्वीकार करते हैं और इसमें यदि कोई कमी है तो वह हमारे प्रतिनिधियों-रिपोर्टरों-एजेण्टों की और हमारी क्षमता की कमी के कारण है। विचारधारात्मक-राजनीतिक सामग्री ज्यादा है या जटिल है, यह शिकायत आज तक सिर्फ कुछ एक पिछड़ी चेतना वाले मजदूरों ने की। ट्रेडयूनियनवादी मजदूर नेताओं ने इसे "उग्रपंथी" अखबार कहा और उनका यह कहना स्वाभाविक है।

कुछ बिरादर संगठनों की यह शिकायत सुनने में आई कि मजदूर वर्ग में सीधे-सीधे विचारधारा की प्रचार की यह कार्रवाई गलत है। हमारे खयाल से अपने अल्पज्ञान-संतोष और अहम्मन्यता के कारण ये साथी मेंशेविक विचारों से बुरीतरह ग्रस्त हैं। "व्यक्तिवाद-विरोध" की मध्यवर्गीय बानगी प्रस्तुत करने का भला इससे अधिक कूपमण्डूकतापूर्ण उदाहरण क्या हो सकता है कि अपने पत्रों में लेखकों के नाम से लेख देना ये लोग व्यक्तिवादी काम मानते हैं। यानी सारा कृतित्व पूरे समूह का! यह नायाब कदम तो लेनिन, स्तालिन और माओ की पार्टियों को भी नहीं सूझा था! दरअसल क्रान्तिकारी सर्वहारा आन्दोलन के शोचनीय बिखराव ने ही आज ऐसे अधकचरे मौलिक सिद्धान्तकारों को जन्म दिया है।

लेखों की विषय-वस्तु और रूप की जटिलता व आम मजदूरों के लिए दुरूह होने की शिकायत अबतक सिर्फ कुछ बुद्धिजीवी साथियों की ओर से आई है, वह भी तब जबकि उनके पास मजदूरों के बीच अखबार लेकर जाने के कोई खास अनुभव नहीं थे। या तो मजदूर वर्ग की समझ और चेतना के बारे में ऐसे साथियों की सोच मनोगत है या फिर मजदूर अखबार के लक्ष्य व स्वरूप के बारे में वे स्पष्ट नहीं हैं।

'बिगुल' अखबार के चरित्र, उद्देश्य, स्वरूप और इसके पाठक समुदाय से संबंधित अपनी ऊपर उल्लिखित आपसी बहस को और अधिक धारदार बनाने तथा मुद्दों पर सम्पादकीय अवस्थिति को और अधिक साफ करने के लिए, इस बार विशेष सामग्री के तौर पर, हम लेनिन की संग्रहीत रचनाओं (अंग्रेजी संस्करण) के चौथे खण्ड में शामिल, 1899 के अंत में लिखित उनके एक लेख **'रूसी सामाजिक जनवाद में एक प्रतिगामी प्रवृत्ति'** का एक अंश प्रकाशित कर रहे हैं। यह लेख रूसी अर्थवादियों के पत्र **'राबोचाया मीस्ल'** (**मजदूर विचार**) के राजनीतिक प्रचार-कार्य, राजनीतिक और आर्थिक संघर्षों के रिश्तों तथा अखबार की भूमिका आदि विषयों से संबंधित भ्रामक एवं गलत विचारों के खिलाफ लिखा गया था। लेख के प्रस्तुत हिस्से में इसी प्रश्न पर विचार किया गया है कि मज़दूरों का क्रान्तिकारी राजनीतिक अखबार मुख्यतः मजदूर वर्ग के किस हिस्से के लिए होता है तथा प्रचार और संगठन के संदर्भ में उसकी ठोस नीति और कार्यनीति क्या होनी चाहिए?

लेनिन के महत्वपूर्ण लेख का यह अंश इस महामानव की जन्मतिथि (22अप्रैल) के अवसर पर हमारी श्रद्धांजलि भी है। लेनिन-जन्मदिवस के अवसर पर, हम अपनी ठोस समस्याओं को सुलझाने के लिए उनसे मार्गदर्शन लेकर उन्हें याद करना चाहते हैं।

मजदूर अखबार — किस मजदूर के लिए?

(क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कुछ समस्याएं)

व्ला. इ. लेनिन

जन्मदिन (22 अप्रैल) के अवसर पर

सभी देशों में मजदूर आन्दोलन का इतिहास यह दिखाता है कि मज़दूर वर्ग के उन्नततर संस्तर ही समाजवाद के विचारों को अपेक्षतया अधिक तेजी के साथ और अधिक आसानी के साथ अपनाते हैं। इन्हीं के बीच से, मुख्य तौर पर, वे अग्रवर्ती मजदूर आते हैं, जिन्हें प्रत्येक मजदूर आन्दोलन आगे लाता है, वे मजदूर जो मेहनतकश जन-समुदाय का विश्वास जीत सकते हैं, ज़ो खुद को पूरी तरह सर्वहारा वर्ग की शिक्षा और संगठन के कार्य के लिए समर्पित करते हैं, जो सचेतन तौर पर समाजवाद को स्वीकार करते हैं और यहां तक कि, स्वतंत्र रूप से समाजवादी सिद्धान्तों को निरूपित कर लेते हैं। हर संभावनासम्पन्न मजदूर आन्दोलन ऐसे मजदूर नेताओं को सामने लाता रहा है, अपने प्रूधों और वाइयां, वाइटलिंग और बेबेल पैदा करता रहा है। और हमारा रूसी मजदूर आन्दोलन भी इस मामले में यूरोपीय आन्दोलन से पीछे नहीं रहने वाला है। आज जबकि शिक्षित समाज ईमानदार, गैरकानूनी साहित्य में दिलचस्पी खोता जा रहा है, मजदूरों के बीच ज्ञान के लिए और समाजवाद के लिए एक उत्कट अभिलाषा पनप रही है, मजदूरों के बीच से सच्चे वीर सामने आ रहे हैं, जो अपनी नारकीय जीवन-स्थितियों के बावजूद, जेलखाने की मशक्कत जैसे कारखाने के जड़ीभूत कर देने वाले श्रम के बावजूद, ऐसा चरित्र और इतनी इच्छाशक्ति रखते हैं कि लगातार अध्ययन, अध्ययन और अध्ययन के काम में जुटे रहते हैं और खुद को सचेतन सामाजिक-जनवादी (कम्युनिस्ट)-"मजदूर बौद्धिक" बना लेते हैं। रूस में ऐसे "मजदूर बौद्धिक" अभी भी मौजूद हैं और हमें हर मुमकिन कोशिश करनी चाहिए कि इनकी कतारें लगातार बढ़ती रहें, इनकी उन्नत मानसिक जरूरत पूरी होती रहे और कि, इनकी पांतों से रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी (रूसी कम्युनिस्ट पार्टी का तत्कालीन नाम) के नेता तैयार हों। जो अखबार सभी रूसी सामाजिक जनवादियों (कम्युन्स्टिों) का मुखपत्र बनना चाहता है, उसे इन अग्रणी मजदूरों के स्तर का ही होना चाहिए, उसे न केवल कृत्रिम ढंग से अपने स्तर को नीचा नहीं करना चाहिए, बल्कि उल्टे उसे लगातार ऊंचा उठाना चाहिए, उसे विश्व सामाजिक-जनवाद (यानी विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन) के सभी रणकौशलात्मक, राजनीतिक और सैद्धान्तिक समस्याओं पर ध्यान देना चाहिए। केवल तभी मजदूर बौद्धिकों की मांगें पूरी होंगी, और वे रूसी मजदूरों के और **परिणामतः** रूसी क्रान्ति के ध्येय को अपने हाथों में ले लेंगे।

संख्या में कम अग्रणी मजदूरों के संस्तर के बाद औसत मजदूरों का व्यापक संस्तर आता है। ये मजदूर भी समाजवाद की उत्कट इच्छा रखते हैं, मजदूर अध्ययन-मण्डलों में भाग लेते हैं, समाजवादी अखबार और किताबें पढ़ते हैं, आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य में भाग लेते हैं और उपरोक्त संस्तर से सिर्फ इसी बात में अलग होते हैं कि ये सामाजिक जनवादी मजदूर आन्दोलन के पूरीतरह स्वतन्त्र नेता नहीं बन सकते। जिस अख़बार को पार्टी का मुखपत्र होना है, उसके कुछ लेखों को औसत मजदूर नहीं समझ पायेगा, जटिल सैद्धांतिक या व्यावहारिक समस्या को पूरी तरह समझ पाने में वह सक्षम नहीं होगा। लेकिन इसका यह मतलब कत्तई नहीं निकलता कि अखबार को अपना स्तर अपने व्यापक आम पाठक समुदाय के स्तर तक नीचे लाना चाहिए। इसके उलट, अखबार को उनका स्तर ऊंचा उठाना चाहिए और मजदूरों के बीच के संस्तर से अग्रणी मजदूरों को आगे लाने में मदद करनी चाहिए। **स्थानीय** व्यावहारिक कामों में डूबे हुए और मुख्यतः मजदूर आन्दोलन की घटनाओं में तथा आन्दोलनात्मक प्रचार की फौरी समस्याओं में दिलचस्पी लेने वाले ऐसे मजदेरों को अपने हर कदम के साथ पूरे रूसी मजदूर आन्दोलन का, इसके ऐतिहासिक कार्यभार का और समाजवाद के अंतिम लक्ष्य का विचार जोड़ना चाहिए। अतः उस अखबार को, जिसके अधिकांश पाठक औसत मजदूर ही हैं, हर स्थानीय और संकीर्ण प्रश्न के साथ समाजवाद और राजनीतिक संघर्ष को जोड़ना चाहिए।

और अंत में, औसत मजदूरों के संस्तर के बाद वह व्यापक जनसमूह आता है जो सर्वहारा वर्ग का अपेक्षतया निचला संस्तर होता है। बहुत मुमकिन है कि एक समाजवादी अखबार पूरीतरह या तकरीबन पूरीतरह उनकी समझ से परे हो (आखिरकार पश्चिमी यूरोप में भी तो सामाजिक जनवादी मतदाताओं की संख्या सामाजिक जनवादी अखबारों की पाठकों की संख्या से कहीं काफी ज्यादा है), लेकिन इससे यह नतीजा निकालना बेतुका होगा कि सामाजिक जनवादियों के अखबार को, अपने को मज़दूरों के निम्नतम संभव स्तर के अनुरूप ढाल लेना चाहिए। इससे सिर्फ यह नतीजा निकलता है कि ऐसे संस्तरों पर राजनीतिक प्रचार और आन्दोलनपरक प्रचार के दूसरे साधनों से प्रभाव डालना चाहिए - अधिक लोकप्रिय भाषा में लिखी गयी पुस्तिकाओं, मौखिक प्रचार तथा मुख्यतः स्थानीय घटनाओं पर तैयार किये गये परचों के द्वारा। सामाजिक जनवादियों को यहीं तक सीमित नहीं रखना चाहिए, बहुत संभव है कि मजदूरों के निम्नतर संस्तरों की चेतना जगाने के पहले कदम कानूनी शैक्षिक गतिविधियों के रूप में अंजाम दिये जायें। पार्टी के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि वह इन गतिविधियों का इस्तेमाल करे, इन्हें उस दिशा में लक्षित करे जहां इनकी सबसे अधिक जरूरत है; कानूनी कार्यकर्ताओं को उस अनछुई जमीन को जोतने के लिए भेजे, जिसपर बाद में सामाजिक जनवादी प्रचारक संगठनकर्ता बीज बोने का काम करने वाले हों। बेशक मजदूरों के निम्नतर संस्तरों के बीच प्रचारकार्य में प्रचारकों को अपनी निजी विशिष्टताओं, स्थान, पेशा (मजदूरों का काम की प्रकृति) आदि की विशिष्टताओं का उपयोग करने की सर्वाधिक व्यापक सम्भावनाएं मिलनी चाहिए। बर्नस्टीन के खिलाफ अपनी पुस्तक में काउत्स्की लिखते हैं, "रणकौशल और आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य को आपस में गड्डमड्ड नहीं किया जाना चाहिए। आन्दोलनात्मक प्रचार का तरीका व्यक्तिगत और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए। आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य में हर प्रचारक को वे तरीके अपनाने की छूट होनी चाहिए, जो वह अपने लिए ठीक समझे: कोई प्रचारक अपने जोशो-खरोश से सबसे अधिक प्रभावित करता है, तो कोई दूसरा अपने तीखे कटाक्षों से, जबकि तीसरा ढेरों मिसालें देकर, वगैरह-वगैरह। प्रचारक के अनुरूप होने के साथ ही, आन्दोलनात्मक प्रचार जनता के भी अनुरूप होना चाहिए। प्रचारक को ऐसे बोलना चाहिए कि सुनने वाले उसकी बातें समझें; उसे शुरुआत ऐसी किसी चीज से करनी चाहिए, जिससे श्रोतागण बखूबी वाकिफ हों। यह सब कुछ स्वतःस्पष्ट है और यह सिर्फ किसानों के बीच आन्दोलनात्मक प्रचार पर ही लागू नहीं होता। गाड़ी चलाने वालों से उसतरह बात नहीं होती, जिसतरह जहाजियों से और जहाजियों से वैसे बात नहीं होती जैसे छापाखाने के मजदूरों से। **आन्दोलनात्मक प्रचार कार्य व्यक्तियों के हिसाब से** होना चाहिए, लेकिन हमारा रणकौशल-हमारी राजनीतिक **गतिविधियां एक-सी ही** होनी चाहिए" (पृ. 2-3)। सामाजिक जनवादी सिद्धान्त के एक अगुवा प्रतिनिधि के इन शब्दों में पार्टी की आम गतिविधि के एक अंग के तौर पर आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य का एक बेहतरीन आकलन निहित है। ये शब्द साफ कर देते हैं कि उन लोगों के संदेह कितने निराधार हैं, जो यह सोचते हैं कि राजनीतिक संघर्ष चलाने वाली क्रान्तिकारी पार्टी का गठन आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य में बाधक होगा, उसे पृष्ठभूमि में डाल देगा और प्रचारकों की स्वतंत्रता को सीमित कर देगा। इसके विपरीत, केवल एक संगठित पार्टी ही व्यापक आन्दोलनात्मक प्रचार का कार्य चला सकती है, सभी आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों पर प्रचारकों को आवश्यक मार्ग दर्शन (और सामग्री) दे सकती है, आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य की हर स्थानीय सफलता का उपयोग पूरे रूस के मजदूरों की शिक्षा के लिए कर सकती है, प्रचारकों को ऐसे

(पेज 7 पर जारी)

क्रान्तिकारी चीन में आर्थिक परिवर्तन

जब शक्ति वास्तव में जनता के हाथों में थी

(तीसरी और अंतिम किश्त)

पूंजीवादी प्रचार तंत्र एक बार फिर यह साबित करने की जी-तोड़ कोशिश कर रहा है कि मेहनतकश अवाम उत्पादन तंत्र, समाज और राजकाज के प्रबंध को सम्हाल ही नहीं सकता और यह कि समाजवाद एक असंभव चीज है।

पूंजीवाद की आदिम बर्बरता की ओर अधिक आततायी रूपों में वापसी के इस दौर में यह याद करना जरूरी है कि इस धरती पर, इसी सदी में, दशकों तक रूस और चीन में मेहनतकश अवाम ने "स्वर्ग पर धावा बोलकर कब्जा किया था और अपनी मुक्ति को साकार करने के साथ ही समाज का जादुई गति से विकास किया था तथा पूर्ण समता हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ते हुए तरह-तरह के सामाजिक प्रयोग किये थे तथा नई-नई चीजों को, संस्थाओं और मूल्यों को जन्म दिया था। चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के दौरान आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन में बदलावों को संगठित करने में आम जनता ने आश्चर्यजनक पहलकदमी और रचनात्मकता दिखाई थी तथा पूंजीवादी तत्वों के विरुद्ध वर्ग-संघर्ष को आगे बढ़ाया था। अमेरिका के मजदूर अखबार 'क्रान्तिकारी मजदूर' के संवाददाता सी. क्लार्क किसिंगर 1972 से '75 के दौरान चीन गये थे और इन महान सामाजिक प्रयोगों के चश्मदीद गवाह रहे थे। उन्हीं के ब्यौरे के आधार पर हमने इस लेखमाला की पहली किश्त में लियाङ काऊ कम्यून में हुए एक समाजवादी प्रयोग का विवरण दिया था जिसमें कम्यून के सदस्यों ने उत्पादन और वितरण के संबंधों का क्रान्तिकारीकरण करते हुए बिजली का एक बिकाऊ माल के बजाय निःशुल्क सामाजिक उपयोग की वस्तु के रूप में उत्पादन शुरू किया था।

दूसरी किश्त में हमने हाङचओ के निकट के लाल पहाड़ी कम्यून में हुए एक प्रयोग का ब्यौरा दिया था जो बताता है कि चीन में माओ के मार्गदर्शन में सर्वहारा क्रान्तिकारियों ने किस प्रकार राजनीतिक लाइन को कमान में रखते हुए समाजवाद के लिए संघर्ष में किसान जनता को अपने पक्ष में किया था और उसे नेतृत्व दिया था तथा किसप्रकार वहां उत्पादकता में आम बढ़ोत्तरी के साथ-साथ स्वामित्व के समाजीकरण, "समतलीकरण" तथा मूल्य के नियम की जकड़बंदी को तोड़ने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया गया था।

प्रस्तुत कड़ी की कहानी इस प्रयोग पर केन्द्रित है कि किस प्रकार ताचिङ तेलक्षेत्र के किसानों और मजदूरों ने "बुर्जुआ अधिकारों" की समस्या को हल करने की शुरुआत की।

-सम्पादक

बुर्जुआ अधिकार के विरुद्ध संघर्ष

समानता की पूंजीवादी अवधारणा विनिमय मूल्य के एक समान पैमाने से चीजों को मापने की पहुंच पर आधारित होती है। मार्क्स ने पहली बार यह स्पष्ट किया कि मानव जीवन की स्थितियों-परिस्थितियों में इतनी भिन्नता-विविधता होती है कि उपरोक्त पैमाने को चाहे जितनी समानतापूर्वक लागू किया जाये, इससे कभी भी वास्तविक सामाजिक समानता हासिल नहीं की जा सकती। एक मिसाल लें। "समान काम के लिए समान वेतन" का सूत्र ऊपर से तो न्यायपूर्ण लगता है पर किसी भी समाज में उम्र, स्वास्थ्य आदि के हिसाब से, तथा आम तौर पर भी, लोगों की काम करने की क्षमता एक नहीं हो सकती। ऐसे भी यदि उनके श्रम और उत्पादन का मोल यदि विनिमय-मूल्य के आधार पर होगा तो असमानता लगातार मौजूद रहेगी और बढ़ती रहेगी। समाजवादी समाज की शुरुआती मंजिलों में यद्यपि उपरोक्त मानक ही लागू होता है पर समाजवाद के आगे कम्युनिज्म की दिशा में आगे बढ़ने की यह शर्त होती है कि वह उपरोक्त संकीर्ण सूत्र से आगे "प्रत्येक से उसकी क्षमतानुसार और सबको उनकी आवश्यकतानुसार" के व्यापक नियम की दिशा में आगे बढ़े। कार्ल मार्क्स ने जर्मनी की समाजवादी पार्टी के गोथा कार्यक्रम की इस बात के लिए भी तीखी आलोचना की थी कि वह समानता की पूंजीवादी अवधारणा से आगे नहीं जाता।

सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान उपरोक्त अवधारणा को तोड़ने और "बुर्जुआ अधिकार" की समस्या को हल करने की दिशा में ताचिङ तेल-क्षेत्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयोग हुआ।

ताचिङ तेल-क्षेत्र को सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान समाजवादी औद्योगिक उपक्रम के राष्ट्रीय मॉडल के तौर पर प्रस्तुत किया गया था। यह तेल क्षेत्र **'महान अग्रवर्ती छलांग'** (ग्रेट लीप फॉरवर्ड) के आन्दोलन के दौरान स्थापित हुआ था और साठ के दशक के शुरुआती वर्षों से यहां तेल का उत्पादन भी होने लगा था। यही वह दौर था जब सोवियत संघ और अमेरिका तथा उनके शिविरों के देश चीन को तेल बेचने पर प्रतिबंध लगाये हुए थे।

अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की वजह से ताचिङ में कुछ असामान्य आर्थिक रूप अस्तित्व में आये थे। भारी उद्योग और खनिज-उत्खनन — दोनो ही होने के कारण ताचिङ का उपक्रम पूरीतरह राज्य के स्वामित्व में था। विशाल तेल क्षेत्र के काफी व्यापक फैलाव के चलते ताचिङ के उपक्रम का दायरा एक पूरी काउण्टी में फैला हुआ था और इस आर्थिक उद्यम की क्रान्तिकारी कमेटी ही काउण्टी सरकार की क्रान्तिकारी कमेटी का काम भी करती थी। यानी वह दोनों साथ-साथ थी। इसके साथ ही पूरे उपक्रम की मिलिशिया इकाइयां मिलाकर एक पूरा मिलिशिया डिवीजन संगठित किया गया था। इसतरह ताचिङ में जनता का आर्थिक राजनीतिक और सैन्य नेतृत्व काफी उच्च स्तर पर एकीकृत था।

तेल क्षेत्र के मजदूर पूरे तेल क्षेत्र में बिखरे हुए गांवों में रहते थे। गांवों के इर्दगिर्द खेती की जमीन थी, जो मजदूरों की खाद्यान्न-आवश्यकताओं को पूरा करती थी। इन खेतों को वास्तव में तेल-क्षेत्र मजदूरों की पत्नियों और परिवारजनों ने तैयार किया था और हालांकि जमीन पर राज्य का मालिकाना था, कृषि-मजदूरों को कम्यून सदस्यों के समान (उनके काम की मात्रा के हिसाब से नकद और सामान-दोनों ही रूपों में) भुगतान किया जाता था। इसके साथ ही, कुछ छोटे सामूहिक औद्योगिक उपक्रम भी थे, (मूलतः इन्हें भी तेल मजदूरों की पत्नियों और परिवार-जनों ने ही तैयार किया था) जो गांवों के आसपास बिखरे हुए थे। चूंकि इन सभी गांवों में औद्योगिक मजदूर और खेतों में काम करने वाले किसान साथ-साथ रहते थे, इसलिए इन्हें "मजदूर-किसान गांव" कहा जाता था।

सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, ताचिङ में तेल-उत्पादन में पांच गुने की बढ़ोत्तरी हुई जो अपने-आप में एक कहानी है। यहां पर हम किसान-मजदूर गांवों में होने वाले कुछ "छोटे-छोटे" परिवर्तनों की चर्चा करेंगे, जिनका दूरगामी ऐतिहासिक महत्व था। इन परिवर्तनों का एक पहलू यह था कि ताचिङ तेल-क्षेत्र में, गांव और शहर के बीच के तथा औद्योगिक और कृषि मजदूरों के बीच के सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक अन्तरों या भेदों की मौजूदगी की आम स्थिति में काफी बदलाव आया था।

यहां सिर्फ एक किसान-मजदूर गांव का उदाहरण लिया जा सकता है जिसमें कुल 536 लोगों के 135 परिवार रहते थे। इनमें से 135 लोग (जिनमें 8 विवाहित जोड़े शामिल थे) गांव के बाहर औद्योगिक काम करते थे। इनमें से 16 कम्युनिस्ट पार्टी के और चार युवक संघ के सदस्य थे। गैर-औद्योगिक मजदूर आठ टोलियों में बंटे हुए थे। इनमें से कुछ खेती का काम करते थे और कुछ पेंच बनाने वाले एक छोटे सहकारी कारखाने में नौकरी करते थे।

गांव में एक भी निजी खेत नहीं था जो एक उन्नत राजनीतिक स्थिति का आम संकेत था। लेकिन खेती का काम करने वालों को अभी हाल तक उनके काम की माप के हिसाब से ('वर्क-प्वाइण्ट्स' के अनुसार) भुगतान किया जाता रहा था। सहकारी पेंच कारखाने की स्त्री मजदूरों को पेंच की बिक्री से हुई आय के आधार पर नकद मजदूरी दी जाती थी।

सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, गांव की औरतों के बीच उनके ढांचे की असंगति या बेमेलपन को लेकर बहुत अधिक बातचीत होने लगी और प्रश्न उठने लगे। सभी औरतें बराबर मेहनत करती थीं, लेकिन खेतों में काम करने वाली औरतों को 'वर्क प्वाइण्ट्स' से काम नापकर मजदूरी मिलती थी (औसतन एक दिन में आठ 'वर्क प्वाइण्ट्स' और एक प्वाइण्ट लगभग 0.16 युवान का नकद मूल्य रखता था)। खेती के कामों की कम श्रम उत्पादकता के कारण खेतों में काम करने वाली स्त्रियों की आमदनी समान श्रम के बावजूद कम होती थी।

औरतें सप्ताह में तीन शाम सामूहिक अध्ययन करती थीं। इसी दौरान यह प्रश्न उठा कि वे बुर्जुआ अधिकार की गुलाम क्यों बनी रहें? जल्दी ही **"जो मेरा है वह मेरा है, मैंने उसे अपनी मेहनत व ईमानदारी से कमाया है"** की मानसिकता को ठिकाने लगाकर स्त्रियों ने खेती और सहकारी उपक्रमों की आमदनी को साझा कर देने का फैसला लिया। बुर्जुआ अधिकार की सोच के हिसाब से यह "उचित नहीं" था क्योंकि औद्योगिक काम करने वाली स्त्रियों की उत्पादकता अधिक थी (यानी वे प्रति घण्टा अधिक विनिमय मूल्य पैदा करती थीं)।

निष्कर्ष

माल-उत्पादन, बुर्जुआ अधिकार और "मुनाफे को कमान में रखने" की प्रवृत्ति की किले की दीवारों पर चोट करने वाली, बुनियादी स्तर पर होने वाली ये सभी कोशिशें तब समाप्त हो गईं, जब 1976 के अंत में चीन में दक्षिणपंथी केन्द्रीय सत्ता पर काबिज हो गये और वास्तविक कम्युनिस्ट नेतृत्व को गिरफ्तार कर लिया गया। यह सब कुछ माओ की मृत्यु के तत्काल बाद घटित हुआ। इसके बाद कुछ ही वर्षों के भीरत जन-कम्यूनों को तोड़ दिया गया, उजरती श्रम को फिर से बहाल कर दिया गया, विदेशी पूंजीपतियों को पूंजी लगाने की छूट दे दी गई और घरेलू पूंजीवाद की स्वतःस्फूर्त शक्तियों को निर्बंध कर दिया गया।

इस घटना से राज्यसत्ता के महत्व का प्रश्न एकबार फिर स्पष्ट हो गया। उत्पीड़ित वर्गों की वास्तविक आजादी का मतलब सिर्फ यही हो सकता है कि वे उन सामाजिक और आर्थिक संबंधों को बदल सकें जिनमें कि वे पैदा हुए हैं तथा अपने आर्थिक एवं राजनीतिक हितों की विरोधी ताकतों का दमन कर सकें।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस वर्ष सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति को जारी रखने और आर्थिक उत्पादन की प्रकृति को ही बदल डालने की कुछ ठोस समस्याओं को हल करने के साथ-साथ पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने के लिए संघर्ष की दिशा में विश्व सर्वहारा का अग्रतम कदम था, सर्वाधिक उन्नत प्रयोग था। केवल जनता द्वारा ही, और केवल मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद के क्रान्तिकारी नेतृत्व में ही ऐसा परिवर्तन संभव हो सकता है। केवल उत्पादन के स्तर को ऊंचा उठाने से उत्पादन-संबंधों में बदलाव कभी नहीं आ सकता।

इसीलिए सांस्कृतिक क्रान्ति का महत्व युगान्तरकारी है। पेरिस कम्यून और अक्टूबर क्रान्ति के बाद, पूंजीवादी उत्पादन के युग को खत्म करने की दिशा में हुए प्रयोगों की यात्रा में वह तीसरा मील का पत्थर था। यह वास्तव में "दस कदम आगे" की घटना थी जिसके बाद अफसोसनाक ढंग से एक कदम पीछे जरूर हटना पड़ा है लेकिन यह पीछे हटना सिर्फ कुछ समय के लिए ही है।

(समाप्त)

प्रस्तुतः अभिनव सिन्हा

प्रदूषण के बहाने 146 नये उद्योगों को बन्द करने की साजिश

मजदूरों की छिनती रोटियां और मालामाल होते पूंजीपति

(पेज 1 से आगे)

का कहना है कि सरकार दिल्ली के उद्योगों के हित को कोई नुकसान नहीं पहुंचने देगी, लेकिन दिल्लीवासियों को शुद्ध आबोहवा मुहैय्या कराना सरकार की प्राथमिकता में है। सही है कि उद्योगों के हित को कोई नुकसान नहीं पहुंचगा और "दिल्लीवासियों" को शुद्ध आबोहवा भी मिलेगी, लेकिन इसमें काम करने वाली भारी मेहलतकश आबादी का क्या होगा? इनके हितों की चिन्ता भला क्यों होने लगी वालिया जी को! और फिर शुद्ध आबोहवा किन दिल्लीवासियों को मुहैया करा रहे हैं मंत्री जी! क्या उन दिल्लीवासियों को जिसकी एक भारी आबादी गन्देनालों के ऊपर, फुटपाथो पर और बदबूदार गन्दगी भरे इलाकों की झुग्गी झोपड़ियों में रसातल की जिन्दगी जी रही हैं या उन दिल्लीवासियों को जिनकी समृद्धि की अट्टालिकाएं खड़ी हैं!

और फिर पर्यावरण तो एक बहाना है। पूंजीपतियों के लिए आज के दौर में और ज्यादा मुनाफा निचोड़ने के लिए पुराने उद्योग बाधा बन चुके हैं। नयी तकनीक वाले उद्योग थोड़े से श्रमिकों के दमपर भारी मुनाफा दे सकते हैं। यह काम सीधे पूंजीपतियों के बस का नहीं था कि वे सीधे-सीधे मनमाना कर सकें। तो यह जिम्मेदारी इनकी हितपोषक सरकारों ने खुद ही उठा ली। इसके लिए, प्रदूषण से अच्छा बहाना और क्या हो सकता था! फिर न्यायपालिका को भी "न्याय" देना आसान हो गया।

झूठ-फरेब से कारखानों को बन्द करने के इस प्रक्रिया की महत्वपूर्ण कड़ी थी 8 जुलाई, 1996, उच्चतम न्यायालय का वह फैसला आया था जिसके तहत पर्यावरण की आड़ लेकर दिल्ली के 168 उद्योग बन्द कर दिये गये थे। ढाई वर्ष के समयावधि ने यह सिद्ध कर दिया कि पर्यावरण महज एक बहाना था। वास्तविकता यह थी कि उन उद्योगों को बन्द करके कारखानेदार कारखानों की जमीन बेचकर मालामाल होना चाहते थे, पुराने मजदूरों की छंटनी करना चाहते थे और अपनी पूंजी अधिक मुनाफा पैदा करने वाले वित्तीय-औद्योगिक उपक्रम में लगाना चाहते थे। और वे इसमें सफल रहे। पर्यावरण प्रदूषण के नाम पर बन्दी की इस प्रक्रिया ने एक बार फिर यही सिद्ध किया है कि -

...कानूनी किताबें उनकी
कारखाने हथियारों के
पादरी प्रोफेसर उनके
जज और जेलर तक उनके
सभी अफसर उनके ...

(ब्रेख्त)

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा

● लेनिन

(कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की तीसरी कांग्रेस में पारित प्रस्ताव)

बिगुल पुस्तिका - एक   मूल्य - 5 रुपये मात्र

प्रतियां मंगाने के लिए तत्काल लिखें :

जनचेतना

3/274, विश्वास खण्ड, गोमती नगर लखनऊ - 226 010

मजदूर अखबार — किस मजदूर के लिए

(पेज 6 से आगे)

स्थानों पर या ऐसे लोगों के बीच भेज सकती है, जहां वे सबसे ज्यादा कामयाब ढंग से काम कर सकते हों। केवल एक संगठित पार्टी में ही आन्दोलनात्मक प्रचार की योग्यता रखने वाले लोग अपने को पूरीतरह इस काम के लिए समर्पित करने की स्थिति में होंगे, जो आन्दोलनात्मक प्रचार कार्य के लिए फायदेमन्द तो होगा ही, सामाजिक जनवादी कार्य के दूसरे पहलुओं के लिये भी हितकारी होगा। इससे पता चलता है कि जो व्यक्ति आर्थिक संघर्ष के पीछे राजनीतिक प्रचार और राजनीतिक आन्दोलनात्मक प्रचार को भुला देता है, जो मजदूर आन्दोलन को एक राजनीतिक पार्टी के संघर्ष में संगठित करने की आवश्यकता को भुला देता है, वह और सब बातों के अलावा, सर्वहारा के निम्नतर संस्तरों को मजदूर वर्ग के लक्ष्य की ओर तेजी से और सफलतापूर्वक आकर्षित करने के अवसर से खुद को वंचित कर लेता है।

(1899 के अंत में लिखित लेनिन के लेख 'रूसी सामाजिक जनवाद में एक प्रतिगामी प्रवृत्ति' का एक अंश। संग्रहीत रचनाएं, अंग्रेजी संस्करण, खण्ड-4, पृ. 280-283)

अनुवादः आलोक रंजन

मजदूरों के बचे-खुचे अधिकारों पर कुल्हाड़ा गिराने की तैयारी

अब नये श्रम-कानूनों की बारी

(पेज 1 से आगे)

की इजाजत और गोल्डेन हैंडशेक योजना के तहत छंटनी-मुआवजा देने की बाध्यता खत्म कर दी जाये। बोनस के भुगतान को उत्पादकता से जोड़ने का प्रस्ताव है। यानी किसी भी उद्योग को तीन-तिकड़म से घाटे में दिखाकर (जो वे करते ही रहते हैं) मालिक बोनस देने के बोझ से छुटकारा पा जायेंगे। ऐसे कुछ कामों की श्रेणी भी प्रस्तावित की गई है, जिनसे स्थायी श्रमिकों को तत्काल हटाकर ठेके पर मजदूर रख लिये जायें। एक सुझाव यह भी आया है कि इलेक्ट्रॉनिक इकाइयों में शिफ्ट ड्यूटी के अवधि को ड्योढ़ी बढ़ा दी जाये और औरतों के काम के घण्टे, खासकर निर्यात-प्रसंस्करण इकाइयों में, बढ़ा दिये जायें। सूचना तकनीकी उद्योग को ठेका मजदूर अधिनियम से तथा निर्यात-प्रसंस्करण इकाइयों को सभी श्रम कानूनों से मुक्त करने का भी सुझाव आया है।

गौरतलब है कि विश्व व्यापार संगठन के प्रति कुत्ते जैसी वफादारी दिखाते हुए, उद्योग मंत्री हेगड़े ने गत 31 मार्च को जिस नई औद्योगिक नीति की घोषणा की, उसमें भारतीय बाजार के अपने माल से पाट देने को आतुर विदेशी कंपनियों को और यहां की सस्ती श्रम शक्ति का लाभ उठाकर पूरीतरह निर्यात के लिए उत्पादन करने वाली कंपनियों को बेशुमार छूट देने के साथ ही एक महत्वपूर्ण गद्दारी भरा फैसला यह लिया गया है कि आगामी 1 जुलाई से सभी निर्यात-प्रसंस्करण क्षेत्रों को मुक्त व्यापार क्षेत्र बना दिया जायेगा, जहां भारत के श्रम कानून लागू ही नहीं होंगे। भाजपाई "स्वदेशी" के दोगलेपन का इससे बड़ा सुबूत भला और क्या हो सकता है?

अभी तक किसी इकाई में 240 दिन काम करने के बाद कोई भी श्रमिक वहां स्थायी नौकरी का हकदार हो जाता है (हालांकि यह होता नहीं है, 240 दिन पूरा होने के पहले ही 'ब्रेक' देकर फिर उसी श्रमिक को ठेके या दिहाड़ी पर रख लिया जाता है)। अब प्रस्ताव है कि 240 दिन की इस अवधि को बढ़ाकर 620 दिन कर दिया जाये। साथ ही, मालिकों को यह आजादी भी देने पर विचार किया जा रहा है कि "अनुशासनहीनता और असंतोषजनक काम" के आधार पर वे श्रमिकों की सेवा समाप्त कर सकें।

उद्योगों की "उत्पादकता" बढ़ाने के नाम पर श्रमिकों के ट्रेड यूनियन अधिकारों में इसतरह की कटौती की बात है कि पहले से ही लकवाग्रस्त यूनियनें पूरीतरह से मालिकों की एजेंसियां बनाकर रह जायें। अभी मात्र सात श्रमिक मिलकर यूनियन गठित कर सकते हैं, अब 10 प्रतिशत मजदूरों की सदस्यता को न्यूनतम शर्त बनाने का प्रस्ताव है। अभी किसी भी यूनियन के सारे के सारे पदाधिकारी "बाहरी व्यक्ति" हो सकते हैं जिनमें अवकाशप्राप्त कर्मी भी शामिल हैं। प्रस्ताव है कि अब "बाहरी" व्यक्तियों की संख्या कुल पदाधिकारियों की संख्या के 50 प्रतिशत तक सीमित कर दी जाये। इसका एक बुनियादी मकसद यह भी है कि अर्थवाद से ग्रस्त ट्रेड यूनियन आंदोलन में क्रान्तिकारी तत्व न घुस पायें और मजदूर वर्ग के बीच क्रान्तिकारी प्रचार के खतरों की रोक दिया जाये। मौजूदा कानूनी प्रावधानों के मुताबिक, निजी क्षेत्र के श्रमिक विवाद सरकार, प्रबंधन और श्रमिक प्रतिनिधियों के बीच तीनतरफा बातचीत से हल किये जाते हैं। अब प्रस्ताव है कि इसमें सरकार की भूमिका समाप्त कर दी जाये और सभी विवाद सिर्फ प्रबंधन से बातचीत करके तय हों।

श्रम कानूनों में प्रस्तावित इन बदलावों ने पूंजीवादी जनवाद के झीने से परदे को भी उतार डाला है और "कल्याणकारी" सरकार के नकाबों को नोचकर इस सच्चाई को एकदम उजागर कर दिया है कि पूंजीवादी व्यवस्था में सरकार सिर्फ पूंजीपतियों की 'मैनेजिंग कमेटी' होती है। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियां आज लागू ही इसलिए हो रही हैं कि मन्दी से ग्रस्त देशी-विदेशी पूंजीपति मिलकर मजदूरों के रंध्र-रंध्र से खून की आखिरी बूंद तक निचोड़ लेने को आतूर हैं। भारतीय पूंजीपति वर्ग की आज की मजबूरी है कि वह साम्राज्यवादियों से तकनीक और पूंजी की मदद लेने के लिए उनकी शर्तों को मानकर देश को उनकी लूट का खुला चरागाह बना दे और खुद उनका 'जूनियर पार्टनर' बना रहे। साथ ही अब खुद उसके लिए भी 'पब्लिक सेक्टर' की जरूरत खतम हो चुकी है। निजीकरण और उदारीकरण की नीतियां इसीलिए लागू हो रही हैं और मजदूरों से अतिलाभ निचोड़ने के लिए उनके बचे-खुचे अधिकारों को भी समाप्त किया जा रहा है। पर दूसरा पहलू यह है कि इस प्रक्रिया में पूंजीवादी व्यवस्था अपने को एकदम बेनकाब कर रही है और मजदूर वर्ग को इस सच्चाई के करीब ला रही है कि अपनी लड़ाई को पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ केन्द्रित किये बिना, अब थोड़ी-बहुत सुविधाएं भी हासिल कर पाने की संभावनाएं खत्म होती जा रही हैं।

आज जो श्रम कानून मौजूद हैं उन्हें पूंजीपतियों की सरकारों ने मजदूरों को तोहफे के रूप में नहीं दिया है। ये लंबे राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय मजदूर आन्दोलनों की देन हैं। साथ ही, अतीत की मजदूर क्रान्तियों से पैदा हुए भय ने भी पूंजीपतियों को कुछ छूट और सुविधाएं देने के लिए बाध्य किया था। रूसी क्रान्ति के बाद, राष्ट्रीय आन्दोलन के उभार के दौर में, 1920 के दशक में जब भारतीय मजदूर वर्ग के संघर्ष उग्र रूप में चल रहे थे, उस समय अंग्रेजी हुकूमत ने 1926 का ट्रेड यूनियन कानून बनाया था। 1947 में भारतीय शासक वर्ग ने मजदूर क्रान्ति के खतरे को दूर करने के लिए और अपने को जनतांत्रिक साबित करने के लिए तथा सशक्त मजदूर आन्दोलन के दबाव में औद्योगिक विवाद कानून बनाया था। हालांकि इन कानूनों के बावजूद हमारे देश में मजदूरों के जनवादी अधिकार अतिसीमित ही रहे। एक तो ये कानून भी मूलत: मालिकों के ही पक्ष में थे और इन्हें लागू करने वाली न्यायपालिका और नौकरशाही भी पूंजीपति वर्ग और उसकी सरकार की ही वफादार चाकर थी, इसलिए पिछले पचास वर्षों में इन कानूनों से मजदूर वर्ग को नाम मात्र का ही लाभ हुआ। और जो भी लाभ मिला या 1947 से लेकर अबतक जो नये अधिकार भी मजदूर वर्ग को मिले, उन्हें मजदूर वर्ग ने लड़कर लिया था। अब ट्रेड यूनियन आन्दोलन के गद्दार नेतृत्व की कारगुजारियों के चलते हालत इतनी बदतर हो चुकी है कि मजदूर वर्ग छोटे से छोटे आर्थिक मसले या जनवादी हक के मसले पर भी संघर्ष नहीं कर पा रहा है। ऐसे ही समय में सरकार एक के बाद एक मजदूर-विरोधी नीतियों को लागू कर रही है और अब बारी है कि श्रम कानूनों के सीमित जनवादी अधिकारों को भी उससे छीन लिया जाये। पिछले आठ वर्षों से मजदूर आन्दोलन का पूंजीवादी, नकली वामपंथी, अर्थवादी गद्दार नेतृत्व नई आर्थिक नीतियों के विरोध में रस्मी कवायद और दिखावटी कार्रवाइयों के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाया है। श्रम कानूनों में बदलाव के मसले पर भी वह कुछ भी कर पाने की स्थिति में नहीं है और वास्तव में कुछ करने की उसकी मंशा भी नहीं है।

श्रम कानूनों के मौजूदा ढांचे को बदलने का सरकारी फैसला साफ कर देता है कि इस पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर वर्ग को वहां तक पीछे ठेल दिया है कि वह दीवार से पीठ टिकाये खड़ा है। यह भी साफ हो चुका है कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन का मौजूदा नेतृत्व मजदूरों को आज किसी भी लड़ाई में नेतृत्व नहीं दे सकता। पचास सालों तक उसने संघर्ष की राह बताने की जगह मजदूर वर्ग को बस याचना करना सिखाया और कानूनी विभ्रमों में फंसाये रखा। अब बदलाव की पूरी प्रक्रिया का एक पहलू यह भी है कि कानूनी विभ्रमों की जमीन ही समाप्त होती जा रही है। यह साफ होता जा रहा है कि मजदूर वर्ग आर-पार की लड़ाई लड़कर ही कुछ पा सकता है। अब जरूरी है कि मजदूर वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन की याद दिलाई जाये और यह बताया जाये कि उसे अपनी लड़ाई अंत तक चलानी होगी-पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने तक चलानी होगी। पूंजीपति वर्ग ने अपना आखिरी विकल्प चुन लिया है और मजदूर वर्ग के सामने भी सिवाय इसके और कोई भी रास्ता नहीं है कि वह भी अपना आखिरी विकल्प चुन ले।

❑ ओ.पी. सिन्हा

तराई का ए.एल.पी. कारखाना आन्दोलन

मशाल जुलूस निकालकर मजदूर एकता का प्रदर्शन

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर), 5 अप्रैल। ए.एल.पी. करखाने के प्रबन्धकों की हठधर्मिता व प्रशासन तथा श्रमविभाग की निष्क्रियता के विरोध में तराई क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत मजदूरों और क्रान्तिकारी मजदूर संगठनों ने मशाल जुलूस निकालकर जबर्दस्त एकजुटता का प्रदर्शन किया। प्रबन्धकों द्वारा मजदूरों की एकता तोड़ने की कोशिशें नाकामयाब हो गयीं और ए.एल.पी. कारखाने में भीतर काम कर रहे मजदूरों ने भी संघर्षरत अपने मजदूर भाइयों के साथ एकजुटता कायम कर ली।

उल्लेखनीय है कि विगत तीन मार्च को स्थानीय आनन्द निशिकावा लिमिटेड (ए.एल.पी.) कारखाने के मजदूर उस वक्त आन्दोलन के लिए बाध्य हुए जब कारखाने के प्रबन्धकों ने साजिशाना तौर पर कारखाने का शिफ्ट बदलकर अस्थायी और कैजुअल मजदूरों को एक साथ कर दिया और इस पर वार्ता करने गए यूनियन के तीन प्रतिनिधियों को निलम्बित कर दिया गया तथा विरोध कर रहे मजदूरों को पुलिस के बल पर कारखाने से बाहर कर दिया गया। तब से आनन्द निशिकावा इम्पलाइज यूनियन के नेतृत्व में मजदूरों का आन्दोलन जारी है। इस बीच प्रबन्धकों के अड़ियल रवैये और सहायक श्रमायुक्त की मध्यस्थता में असफल वार्ताओं का क्रम भी जारी है।

इधर ए.एल.पी. के श्रमिकों ने आन्दोलन को व्यापक स्वरूप देने और श्रमविभाग व प्रशासनिक अमलों पर जन दबाव के लिए तराई क्षेत्र के अन्य कारखानों-मिलों के श्रमिकों, श्रमिक यूनियनों, क्रांन्तिकारी मजदूर संगठनों और आम नागरिकों का समर्थन जुटाने का सफल प्रयास किया- उन्हें उनका व्यापक समर्थन भी मिल रहा है। इसी क्रम में मजदूरों द्वारा उपश्रमायुक्त हल्द्वानी का घेराव किया गया, और आज मशाल जुलूश निकाला गया। आन्दोलन में क्रान्तिकारी संगठनों-बिगुल मजदूर दस्ता व क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन के कार्यकर्ता बड़ी शिद्दत से हिस्सेदारी कर रहे हैं।

ए.एल.पी. के वर्तमान आन्दोलन में योजनाविहीनता और कुछ अपरिपक्व निर्णयों के बावजूद न केवल ए.एल.पी. के वरन पूरे क्षेत्र के मजदूरों में संग्रामी एकजुटता दिखाई दे रही है। और यह एक बेहद जरूरी काम है। ऐसे समय में जब पूरे मजदूर आबादी को खण्ड-खण्ड में बांटा जा चुका हो, घोर मजदूर विरोधी नीतियां लागू हो रही हों, पूरे श्रमकानून को ही बदला जा रहा हो और परम्परागत ट्रेडयूनियनें पूरी तरह से रीढ़ विहीन होकर मजदूर आबादी के साथ गद्दारियां कर रही हो यह छोटी सी एकता कुछ मायने रखती है।

तो इसी प्रयास से, धीरे-धीरे ही सही, आन्दोलन अब एक शक्ल अख्तियार करता जा रहा है जो जीत के किसी न किसी मुकाम तक पहुंचेगा ही। लेकिन एक बात मजदूर साथियों को याद रखने की है कि आज पूरी दुनिया की आबो-हवा पूंजीवादी लुटेरों के पक्ष में बह रही है। ऐसे में क्षेत्रीय पैमाने का भारी जनदबाव संग्रामी एकजुटता ही अड़ियल प्रबन्धकों पर अंकुश लगा सकता है। वर्ना वह अपनी तीन-तिकड़मों और प्रशासनिक गठजोड़ से आन्दोलन तोड़ने की कुचेष्टा में सफल हो जाएगा। लेकिन यह महज उसकी तात्कालीक जीत हो सकती है, अन्तिम विजय तो मजदूरों को ही मिलनी है।

"दृढ़ संकल्प रखो, कुरबानियों से न डरो और हर तरह की कठिनाईयों को दूर करते हुए विजय प्राप्त करो।"

-माओ त्से-तुङ

अक्टूबर क्रान्ति की 81 वीं वर्षगांठ के अवसर पर
राहुल फाउण्डेशन की नई प्रस्तुति

अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन

सोवियत समाजवादी क्रान्ति की तैयारी से लेकर बाद के दौर तक वहां उपस्थित रहकर युगान्तरकारी घटनाओं के साक्षी रहे अमेरिकी पत्रकार एल्बर्ट रीस विलियम्स की दो दुर्लभ कृतियाँ-

'रूसी क्रान्ति के दौरान' तथा 'लेनिन: व्यक्तित्व और कार्य'

एक ही जिल्द में हिन्दी पाठकों के लिए विशेष रूप से

साथ ही रीस विलियम्स का परिचय

मूल्य- रु. 75/- (पेपर बैक) रु. 150/- (सजिल्द)

एल्बर्ट रीस विलियम्स की कृतियां क्रान्तिकारी दौर की घटनाओं में उनके असली नायक-आम जन समुदाय के कारनामों और सोच को सामने लाती है तथा लेनिन के मानवीय, जीवन्त और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का प्रामाणिक प्रभावी चित्र प्रस्तुत करती है, जिनके साथ उन्हें लम्बे समय तक रहने का अवसर मिला था।

प्राप्त करें:
जनचेतना
3/274 विश्वासखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226010

बिगुल पोस्टर श्रृंखला के तहत प्राप्त करें दो आकर्षक पोस्टर-

कम्युनिस्ट घोषणापत्र की 150वीं वर्षगाठ के अवसर पर
बिगुल पोस्टर-१

महान पेरिस कम्यून की 128वीं जयन्ती (18 मार्च) के अवसर पर
बिगुल पोस्टर-२

प्राप्ति स्थान-**जनचेतना**
3/274, विश्वास खण्ड,गोमती नगर,लखनऊ-226 010

स्वत्वाधिकारी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ। संपादक : डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता : द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा कापुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।